

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182854

UNIVERSAL
LIBRARY

हिन्दी-भाषा-सार

[गद्य भाग]

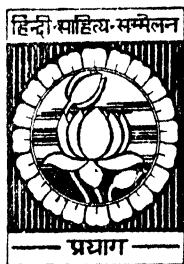
संग्रहकर्ता

स्वर्गीय लाला भगवानदीन,

तथा

स्वर्गीय रामदास गौड़, एम्० ए०

“गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति”



हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

अथारहवीं संस्करण : २००२ : मूल्य १।)

मुद्रक—गिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद ।

पहले संस्करण पर वक्तव्य

साहित्य प्रेमियोंसे यह बात छिपी नहीं है कि प्रसिद्ध लेखकोंके उत्तमोत्तम लेखोंके संग्रह में कितना समय और परिश्रम लगता है। इस संग्रह के लिये हमें समय बहुत ही कम मिला। पसन्द भी अपनी-अपनी होती है। अतः बहुत सम्भव है कि इस संग्रहमें ऐसे लेख भी आ गये हों जो किसी महाशयको अच्छे न जँचे। पुस्तकका प्रचार होनेपर जो महाशय लेखोंकी अनुपयोगिता दरसावेंगे, हम उनके कृतज्ञ होंगे और अगले संस्करणमें बदल देनेका उद्योग करेंगे।

हमने जिन विचारोंसे इन लेखोंका संग्रह किया है उन्हें यहां प्रकट कर देना आवश्यक है। हमारे विचार यह हैं कि इस संग्रहमें यह दिखला दिया जायकि (१) हिन्दी भाषामें सङ्गठित गद्य-लेख लिखनेकी प्रणालीका पता कबसे चलता है, (२) गद्य लिखनेकी प्रणाली क्रमशः कैसे पुष्ट होती गई और (३) हिन्दी कितने प्रकारकी हो सकती है।

पहले विचारके विषयमें हमारा अनुमान है कि पं० लल्लूलालजीके ही सिर गद्यप्रणाली की उद्भावनाकी पाग नहीं बाँधी जा सकती, जैसा कि बहुत लोगोंका विचार है। खोज करनेसे उनसे भी पुराने, गद्य-लेखकों के उत्तम लेख और ग्रन्थ मिल सकते हैं। हमने इस संग्रहमें प्रथम लेख मुन्शी सदासुखजीका रखा है। यह प्रयागके रहनेवाले थे। इन्होंने लल्लूलालजीसे बहुत पहले बहुतसे गद्य लेख लिखे हैं। हो सकेगा तो इनके लेखोंका संग्रह पुस्तकाकार निकाला जायगा। यह पहला लेख लेखक की अपने हाथसे लिखी हुई प्रतिसे लिया गया है। लिपि उर्दू है; सो भी शिकस्त। इस लेखमें तिथि वा संवत् तो नहीं लिखा; परन्तु जिन लोगोंके बीचमें यह है उनमें सं० १८३६-४० का समय दिया हुआ है।

मुन्शीजी फ़ारसी तथा संस्कृतके अच्छे विद्वान थे, फ़ारसी, उर्दू और हिन्दी के अच्छे कवि और गद्य लेखक थे ।

इस लेखमें महत्वकी बात यह है कि जहाँ लल्लूलालजी वा सदल मिश्रजीने सरकारी फ़रमाइशसे लिखा है, जिससे उसपर कृत्रिमताका सन्देह भी हो सकता है, वहाँ मुन्शीजीने अपने लेख निःस्वार्थभावसे प्रयागसे लेकर दिल्लीतककी शिष्ट हिन्दू-समाजकी साधारण बोलचालकी हिन्दीमें लिखे हैं । इस लेखमें विशेषता यह भी है कि अरबी फ़ारसीका विद्वान न होते हुए भी लेखकने विदेशी शब्दोंका प्रयोग नहीं किया है ।

इस लेखमें लेखकका उद्देश्य यह न था कि वह अपनी भाषाका सौष्ठव दिखलाता, वरन् 'सुरासुर' शब्दके विषयमें प्रचलित भ्रांतिका निवारण ही अभीष्ट जान पड़ता है । अतः इस लेखसे स्पष्ट प्रमाणित है कि हिन्दीकी आधुनिक शैली कृत्रिम नहीं वरन् प्राचीन है ।

हमारा अनुमान है कि खोज करनेपर मुन्शी सदासुखसे भी पुराने गद्य लेखक मिल सकते हैं; क्योंकि उन्होंने स्वयं अपनी एक कवितामें खेद प्रकट करते हुये लिखा है कि—

“रस्मो रिवाज भाषाका दुनियासे उठ गया”

सैयद इंशा अल्लाहख़ाँ दूसरे लेखक हैं जिन्होंने लल्लूलालजी लिखित प्रेमसागरसे कुछ पहलेही “उदयभान-चरित” ठेठ हिन्दी भाषामें लिखा इनका लेख हमने इसलिए संग्रह किया है कि हमारे मुसलमान भाई विचार करें कि एक प्रसिद्ध लखनऊ-निवासी मुसलमान, उर्दू-फ़ारसीका योग्य लेखक, नवाब सआदतअलीख़ाँका मुँहलगा मुसाहब और इनके दरबारका कविराज हिन्दी भाषामें पुस्तक लिखनेकी कैसी बात समझता था । इस भाषाको तुच्छ और मुरदा समझता था वा इस भाषामें योग्यता सम्पादन अपने गौरवका कारण समझता था !

अपने दूसरे विचारके प्रमाणमें हम यह सारी पुस्तक ही पाठकोंके सामने रखते हैं । इसे ध्यान-पूर्वक पढ़नेसे स्पष्ट ज्ञान हो जायगा कि गद्यप्रणालीका क्रमशः विकास होता गया है । लेखोंमें वाक्यरचना,

व्याकरणविचार, शब्दयोजना, मुहावरे, रोजमर्रा तथा भाषाके अन्य सौष्ठवों पर अधिकाधिक ध्यान होता आया है और भाषाका बल वैभव उत्तरोत्तर बढ़ता गया है। इसीलिए लेखकोंके नाम तथा उनके लेख वर्णक्रमसे न रखकर कालक्रमसे रखे गये हैं। पहले लेखमें विचार तो पुष्ट है, परन्तु प्रकाशनकी शृंखलामें कुछ ढिलाई और भाषाके सौष्ठवमें लेखककी कुछ बेपरवाही अवश्य पायी जाती है। दूसरे लेखकी शैलीमें भाषा तो ठेठ हिन्दी है, पर वाक्यरचनामें कुछ-कुछ फ़ारसीका सा सङ्गठन पाया जाता है; क्योंकि लेखक अरबी फ़ारसीका विद्वान और योग्य कवि था। तीसरे और चौथे लेखोंमें भाषाकी कुछ अधिक सफ़ाई तो झलकती है, परन्तु पण्डिताऊ शैलीने पण्ड नहीं छोड़ा। पाँचवें लेखक राजा शिवप्रसादकी शैली ही निराली है। इन्होंने कठिन-कठिन फ़ारसी—अरबी शब्द ही नहीं लिखे, वरन् कहीं फ़ारसी व्याकरणका अनुसरण भी किया है; साथ ही साथ भाषामें कुछ अधिक सफ़ाई आ गयी है। सातवें आठवें लेखकोंकी भाषा बहुत स्वच्छ मुहावरेदार और सुष्ठु है। वाक्यरचना और व्याकरणका भी अधिक ध्यान रखा गया है। नये लेखक बाबू हरिश्चन्द्र हैं। इन्होंने फ़ारसी अरबीके शब्दोंको निकाल कर राजा शिवप्रसादकी शैलीको छोड़ अपनी एक नवीन शैली स्थिर की है जो पहलेकी सब शैलियोंसे उत्तम मानी जाती है, परन्तु इसमें दो बातें विशेष हैं। एक तो यह कि बाबू साहबके क्रिया प्रयोगमें पूर्वापन झलकता है, और कभी कभी ग्रामीण शब्द रखनेमें भी नहीं हिचकते। दसवें लेखक डा० नज़ीर अहमदकी भाषाको हम मिश्रित हिन्दी नाम देते हैं। इनकी भाषा शुद्ध हिन्दी कही जा सकती, यदि इसमें फ़ारसी अरबीके कठिन शब्द न होते और फ़ारसी व्याकरणके अनुसार गढ़े हुए वाक्य न आ जाते। ग्यारहवें लेखक ला० श्रीनिवास दासके लेखोंमें मुहावरोंकी अधिक सफ़ाई प्रत्यक्ष है।

पं० रतननाथजीको सब लोग उर्दू लेखक ही मानते हैं। फिसाना-आज़ाद उनका सर्वमान्य ग्रन्थ है। उसी ग्रन्थमें उन्होंने कुछ ऐसे लेख

लिखे हैं, जो यदि देवनागरी लिपिमें लिख दिये जायँ तो शुद्ध हिन्दीके लेख बहे जा सकते हैं। यही बात प्रमाणित करनेके लिए हमने उनका एक लेख इस संग्रहमें दिया है।

आगेके शेष लेखक भी बाबू हरिश्चन्द्रकी शैलीके अनुकरणकर्ता और पुष्टकर्ता ही हैं। प्रतापनारायण मिश्रके लेखोंमें हास्यरसकी प्रधानता रहा करती थी, पर खेदसे कहना पड़ता है कि उनके हास्यरसमें ग्रामीणताका पुट अवश्य रहता है, इसीसे हमने उनका कोई हास्यमय लेख नहीं चुना। पं० रामशङ्कर व्यास चोज और युक्तिके बड़े प्रेमी थे। बाबू राधाकृष्णदासको बाबू हरिश्चन्द्रका पूरा पैरोकार ही समझना चाहिए। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' की भाषा स्वच्छ और लेखशैली जोरदार और हास्यरसमय हुआ करती थी।

अपने तीसरे विचारके अनुसार हम हिन्दी भाषा दो प्रकारकी मानते हैं, शुद्ध और मिश्रित। मिश्रित हिन्दीका ही दूसरा नाम 'उर्दू' है। इसी विचारसे हमने इस संग्रहमें डा० नज़ीर अहमद और पं० रतननाथके भी लेख सम्मिलित किये हैं। राजा शिवप्रसादको समस्त हिन्दी प्रेमी एक आदरणीय हिन्दी लेखक मानते हैं। इन राजा साहबके इसी लेखमें जो इस संग्रहमें उद्धृत है मुतरज्जह, क्रदमबक्रदम; ख़वार व ज़लील शुक्रगुज़ार, हालतके मुवाफ़िक, इलाक़ा, ज़बाने मज़हबी, तबज्जुह, अवांम, आईनकानून, अपने अन्दर जगह दी मुसन्नफ़की तसनीफ़ ग़ैर-फसीह और पुरतकल्लुफ़ मुतवज्जिह हुआ, मशहूर नाज़िम और नासिर हुरूफ़तहज़ी इत्यादि-इत्यादि कठिन अरबी और फारसीके शब्द और वाक्य मौजूद हैं। जब इन शब्दोंके लेखक राजा साहब हिन्दी लेखक माने जाते हैं, तब हमको कोई ऐसी विधि नहीं मिलती कि हम डा० नज़ीर अहमद और पं० रतननाथजीको लेखक न मानें।

एक बात और है। जब हम गुजराती साहित्यकी ओर देखते हैं तो वहाँ भी दो प्रकारकी भाषा पाते हैं—(१) शुद्ध गुजराती (२) पारसी गुजराती। इन दोनों गुजरातियोंका बहुत-सा साहित्य भी विद्यमान है।

हमें आशा है कि हिन्दी प्रेमी महाशय हमारी इस धारणापर विचार करेंगे और इसलिए कि डा० नज़ीर अहमद और पं० रतननाथके लेख संग्रह करनेका साहस किया है, रुष्ट न होंगे। इन्हें पढ़िये और बतलाइये कि राजा शिवप्रसादके लेखमें अधिक फ़ारसी-अरबीपन है वा इन दोनों लेखकों के लेखोंमें ? ऐसी दशामें क्या आप कोई प्रमाण दे सकते हैं कि राजा शिवप्रसाद हिन्दीके लेखक हैं और पं० रतननाथ किसी अन्य भाषाके ? आप केवल इतना ही कह सकेंगे कि राजा शिव-प्रसादके लेख देवनागरी लिपिमें बायेंसे दायीं ओरको गये हैं और इन दोनों लेखकोंके लेख फ़ारसी लिपिमें 'होनेके कारण दायेंसे बाईं' ओर को दौड़े हैं। परन्तु केवल लिपि-भेदसे भाषाभेद प्रमाणित नहीं हो सकता। भाषामात्रकी पहचान उसके क्रिया पदोंसे होती है। एक ही क्रियापद रखनेवाली दो भाषाओंका होना वैसा ही है जैसे दो व्यक्तियों के शरीर में अभिन्न कर्मेन्द्रियाँ। ऐसी दो भाषाओंकी अलग-अलग स्थिति केवल कल्पनामात्र है। राजा शिवप्रसादके लेखोंको फ़ारसी लिपिमें लिख डालें तो कहीं कहीं पं० रतननाथ आदि मिश्रित हिन्दी के लिखनेवालोंसे भी अधिक विदेशी प्रयोग दिखाई पड़ेंगे।

यदि हमारा यह विचार ज्यों का त्यों मान लिया जाय तो स्पष्टतः हिन्दी के दो रूप समझे जा सकते हैं, शुद्ध और मिश्रित। पहलेमें संस्कृत के तद्भव और तत्सम शब्द अधिक होते हैं, दूसरेमें विदेशी भाषाओंके।

पूर्वनियुक्त भाषासार नामक पुस्तक के अभाव में परीक्षामन्त्रीजीके आग्रहसे हमने अपने विचारोंके अनुसार बड़ी जल्दीमें यह संग्रह प्रस्तुत किया है। आशा है कि हिन्दी प्रेमी महाशय भूलोंके लिए हमें क्षमा करेंगे और सुधार करनेकी इच्छासे त्रुटियोंकी सूचना देते रहेंगे।

इस संग्रहमें हमने बाबू बालमुकुन्द गुप्त और पं० बालकृष्ण भट्टके लेख केवल इस विचार से नहीं रखे कि जिस परीक्षाके लिए यह संग्रह किया है उसमें इन दोनों महाशयोंकी पुस्तक ही नियत है। उन्हींसे परीक्षार्थी इन महाशयोंकी लेखशैली का अनुमान कर सकते हैं।

यह भी निवेदन कर देना उचित ही है कि इस संग्रहमें बहुतसे ऐसे उदाहरण मिलेंगे कि एक ही शब्द कहीं किसी प्रकार और कहीं किसी प्रकार लिखा हुआ है—जैसे हिन्दी और हिंदी, संबंध और सम्बन्ध, दंड और दण्ड इत्यादि । इस विभिन्नता के हेतु हम इतना ही कह देना उचित समझते हैं कि जिन पुस्तकोंसे हमने लेख संग्रह किये हैं उनमें जैसा लिखा पाया वैसा ही लिख दिया गया है जिससे पाठकों को उन लेखककी वर्त्तनीका भी पता चल जाय ।^१

विनीत संग्रहकर्त्ता—

काशी
शनीवार, सरस्वती पञ्चमी }
१९७३

भगवानदीन
रामदास गौड़

वर्त्तनी^१

गद्यलेखनशैली जबतक भारतेन्दुके साँचेमें ढल नहीं चुकी थी तबतक वर्त्तनीपर कोई विशेष विचार नहीं होता था । लेखकोंमें कई बातोंमें अब तक गहरा मतभेद है । हमने भरसक समान वर्त्तनी रखनेका उद्योग किया है, साथ ही इस विषयमें लेखकोंकी व्यक्तिगत विशेषतापर भी ध्यान रखा है । विभक्तियाँ मिलाकर लिखना हम केवल व्याकरण के नियमोंके अनुकूल ही नहीं समझते वरन् उसमें बिना किसी तरहकी हानिके देशका स्पष्ट आर्थिक लाभ भी देखते हैं । यदि हम विभक्तियाँ अलगगाकर छपवाते तो ठाई सौसे कम पृष्ठ न होते और मूल्य भी बारह आने रखना पड़ता । इस सम्बन्धमें एवं प्रूफ संशोधन में जो सहायता हमें इसके मुद्रक सेठ महावीरप्रसादजी पोद्दारसे मिली उसके लिये हम कृतज्ञ हैं ।

—रामदास गौड़ १९७६

दूसरे संस्करण पर वक्तव्य

पहले संस्करणका संग्रह लिखाई-छपाई सभी काम एक मासके भीतर किये गये थे। आशा न थी कि ऐसी उतावलीका काम किसी हिन्दी प्रेमीको पसन्द आयेगा। परन्तु बड़े सन्तोषकी बात है कि हमें केवल एक लेख बदल देनेका परामर्श मिला।

दूसरे संस्करणकी तैयारी में हमको समय पर्याप्त मिला। हमने प्रत्येक लेखककी संक्षिप्त जीवनी और शैली की थोड़े से ही शब्दों में आलोचना भी दी है। जहां-तहां टिप्पणियाँ भी दी हैं। मुन्शी सदासुख और राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का एक एक लेख और बढ़ाया। स्वा० दयानन्द सरस्वती, बाबू बालमुकुन्द गुप्त और पं० बालकृष्ण भट्ट इन तीनों साहित्यिकों को भी संग्रह में सम्मिलित किया। इस प्रकार पहले १५ लेखक थे, अब १८ हुए।

इस संग्रहको पहलेकी अपेक्षा अधिक उपयोगी बनानेका भरसक उद्योग किया गया है। इक्कीस अवतरणोंमेंसे केवल सात नये हैं, अतः जो कुछ इस संग्रहमें उत्तमता है अधिकांश हमारे परम मित्र लाला भगवानदीनके परिश्रम का फल है जिसका श्रेय उन्हें मिलना चाहिए। प्रस्तुत परिवर्तन और परिवर्धन वर्तमान लेखक का काम है जिसकी त्रुटियों और भूलोंके लिए बही अकेला उत्तरदायी है। हिन्दी गद्यरसिक इन भूलोंकी ओर लेखकका ध्यान कृपया अवश्य आकृष्ट कर उसे कृतज्ञ करें।

गत संस्करण के वक्तव्यमें हमने शुद्ध और मिश्रित हिन्दी की जो विवेचना किया था उसके विरुद्ध किसीका कोई प्रस्ताव नहीं आया। इस संस्करण में मिश्रित हिन्दी के दो बड़े प्रसिद्ध लेखकोंके वह अवतरण दिये हैं जो इस प्रतिज्ञाके साथ लिखे गये थे कि विदेशी शब्द एक भी न

आवें । पहले लेखक हैं सैयद इंशाअल्लाह जिन्होंने अरबीसे बचनेके लिए अपने नाम तकका अनुवाद कर डाला है^१ । दूसरे लेखक हैं उनसे सौ बरस पीछेके पंडित रतननाथ सरशार । शुद्ध हिन्दी के प्रयत्नमें यह दोनों ही कृतकार्य हुये, परन्तु दोनोंकी भाषामें अस्वाभाविकता आ गयी है । मुन्शी सदासुखके दूसरे अवतरणमें भी यही विशेषता है कि “साहब” के सिवा अरबी-फ़ारसीके शब्दोंका प्रयोग नहीं हुआ है; परन्तु उनकी शैली कुछ तो इस कारणसे और कुछ दार्शनिक विषय होनेसे पण्डिताऊ हो गई है । इस संग्रहके समस्त लेखकोंका समीक्षात्मक अनुशीलन करनेसे पता चलता है कि गद्यकी शैली वही ज़ोरदार हो सकती है जो नित्यकी स्वाभाविक बोलचालके अनुसार हो, जिसमें साधारण नागरिक शिष्ट भाषाके मुहावरों का प्रयोग हो । इसी शैलीकी ओरकाला नुसार अच्छे लेखकोंकी प्रवृत्ति भी होती आती है, और सदासुख और इन्शासे लेकर आजतक अधिकांश लेखकोंने इस शैली का अच्छा नमूना दिखाया है । इस गद्य सुधातरंगिणी का जन्म किसी अज्ञात मानसरोवरमें हुआ था और यद्यपि सदासुख से लल्लूलालजी तक अधिक उतार नहीं मिला तो भी सदलमिश्रसे राजा शिवप्रसाद तक इसे बहुत नीची छलांग मारनी पड़ी, और यद्यपि तबसे “पूर्ण” कविका इसका वेग थोड़ा बहुत नियमित बढ़ता गया है तो भी इसके स्वछन्द प्रवाहके लिये पूरा मैदान नहीं मिला है । अभी कितनेही खेत सींचने को पड़े मुरझा रहे हैं, कितनों ही में अभी बीज भी नहीं पड़े और बहुतेरोंमें तो हल भी नहीं चला है ।

^१ “अब इस कहानी का कहनेवाला यहाँ आपको जताता और जैसा कुछ लोग उसे पुकारते हैं सुनाता है । दहना हाथ मुँह पर फेर आपको जताता हूँ जो मेरे दाताने चाहा तो……” इस अंश में लेखकने अपना नाम हिन्दीमें अनुवाद करके बताया है । “इंशाअल्लाह” का अर्थ है “जो अल्लाह ने चाहा तो” और यह शब्द प्रतिज्ञा करते समय बोलनेवाला बहुधा मुँह पर दहना हाथ फेरकर कहता है ।—सं०

अनेक चट्टानोंसे मार्ग सकावट है, रोड़े प्रवाहके वेगसे घिसकर अभी चिकने नहीं हुए हैं। समय पाकर धीरे धीरे रोड़े घिस जायँगे, चट्टाने रेत होकर बह जायँगी और खेतोंमें डहडही हरियाली शोभा बढ़ाने लगेगी। भाषाका विस्तार उन्नति और प्रसार जिस तरह साहित्यके सर्व-तोभद्र विस्तारपर निर्भर है उसी तरह साहित्यकी उन्नति और प्रचार भी भाषाके बल और वैभवपर अवलम्बित है भाषा और साहित्यका अन्नो-न्याश्रय सम्बन्ध है।

उर्दू और हिन्दीका अथवा मिश्रित और शुद्ध हिन्दीका भगड़ा भूतकालके इतिहासमें ही रहना चाहिये न तो उर्दूकी अवहेलना व उपेक्षा करनेसे उसके ऊँचे दर्जेका काव्यसाहित्य नष्ट हो सकता है और न नागरीलिपि के बहिष्कारसे व हिन्दीको मुरदा ज़बान कहनेसे उसके सड़े तेरह करोड़ अनुयायी उसे छोड़ सकते हैं। साथ ही इसमें भी संदेह नहीं कि दोनों का व्याकरण एक है, नियम और रीतियाँ एक ही हैं क्रियापद एक ही हैं। शब्द भांडारमें भी उर्दूके सर्वोत्तम कोष “फरहंगेआसफ़िया” ५५ हजार के लगभग शब्दोंमेंसे उसी कोषकारके प्रमाणसे ३२ हजारके लगभग शुद्ध हिन्दी है जो तद्भव और अर्द्धतत्समके रूपमें है। जिसहिन्दी का प्रचार इन दिनों नागरी के साहित्यमें हो रहा है उसमें भी संस्कृतके अर्द्धतत्समों और तद्भवोंके सिवा विदेशी शब्दोंकी संख्या थोड़ी नहीं है। अरबी, तुर्की, फ़ारसी, पुर्तगाली, ओलंजी, यूनानी, फ़रासीसी, अंग्रेज़ी सभी विदेशी भाषाओंके शब्द नित्यकी बोलचालमें ऐसे घुलमिल गये हैं कि उन्हें विदेशी कहकर अलग करना तो दूर रहा, उनके पूर्वरूपको पहचानना कठिन हो गया है। यह सब जुबान की खराद पर चढ़कर घिस घिसकर खासे हिन्दी शब्द हो गये हैं। ऐसी दशामें जब उर्दू हिन्दीमें केवल पहिरावेका अन्तर रह गया तो वह लेखककी इच्छा पर निर्भर है कि अपने लेखमें प्रति सैकड़ा किसने शब्द विदेशी रखे और कितने स्वदेशी। विदेशी शब्दोंकी बहुतायत हो और लिपि फ़ारसी हो तो उर्दू कहिये। विदेशी शब्दोंकी कमी हो तो हिन्दी कहना चाहिये; लिपि चाहे

जो हो, क्योंकि योगवाशिष्ठादि शुद्ध हिन्दी भाषाके ग्रन्थ तथा कई पञ्जाबी अखबार जिनकी भाषामें संस्कृतके अर्द्धतत्समोंका बाहुल्य है फ़ारसी लिपिमें छपते हैं । दोनों शैलियोंमें जितनी समानता है उतना अन्तर नहीं है । रही प्रचारकी बात, सो यदि उसमानिया यूनिवर्सिटीने उर्दू को आश्रय दिया है, यदि बम्बई मद्रास आदि में मुसलमान भाई दक्खिनी भाषाके नामसे उर्दूका प्रचार कर रहे हैं तो हिन्दीका बड़ा भारी उपकार कर रहे हैं । जब अपरिचित विदेशी शब्दोंको लेकर मिश्रित हिन्दीने मार्ग प्रशस्त कर दिया तब शुद्ध हिन्दी का प्रवेश तो उन प्रान्तोंकी भाषाओंमें तत्समों की बहुतायतसे सहज ही हो जायगा ।

इस संग्रहका दूसरा भाग जिसमें वर्त्तमान लेखकों के गद्य के नमूने होंगे इसी ढंगपर तैयार किया जायगा । लेखकोंसे विनीत प्रार्थना है कि अपने लेखों के उत्तम नमूने भेजने की कृपा करें और प्रकाशित करने की आज्ञा दें ।

बड़ी पियारी, श्रीकाशी }
विजया १०, १९७६ । }

रामदास गौड़

“अति अपार जे सरितवर, जो नृप सेतु कराहिँ ।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु स्रम पारहिँ जाहिँ ॥”

—तुलसीदास

विषय-सूची

विषय	पृष्ठांक
पहले संस्करणपर वक्तव्य	(३)
दूसरे संस्करणपर वक्तव्य	(६)
१—मुन्शी सदासुख (सुखसागर)	१
सुरासुर निर्याय	२
अथ वार्त्तिक	६
२—सै० इंशाअल्लाह खाँ	६
रानी केतकी की कहानी	१०
३—पं० लल्लूलाल जी	२०
स्यमंतक मणि की कथा	२०
४—सदल मिश्र	२६
नासिकेतोपाख्यान	२६
५—राजा शिवप्रसाद	३६
भाषा का इतिहास	३७
६—स्वामी दयानन्द सरस्वती	६२
पत्र	६३
७—राजा लक्ष्मणसिंह	६५
शकुन्तला नाटक	६६
८—बा० तोताराम बी० ए०	८०
कीर्त्तिकेतु नाटक	८०
९—बाबू हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु)	८६
एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न	८६
१०—डॉ० नज़ीर अहमद	९७
मिरातुल उरुस	९७

विषय	पृष्ठांक
११—लाला श्रीनिवासदास	१०६
परीक्षा गुरु—भले बुरेकी पहचान	१०७
१२—पं० रतननाथ दर (सरशार)	११४
वेगमों की बोली	११५
लड़कों को गहना पिन्धाना	११७
१३—पं० प्रतापनारायण मिश्र	१२२
मनोयोग (सुचाल शिक्षा)	१२२
१४—पं० बालकृष्ण भट्ट	१२७
चन्द्रोदय	१२८
आसू	१३१
१५—पं० रामशंकर व्यास	१३५
आभूषण का श्लेष	१३६
पान का श्लेष	१३७
वस्त्र का श्लेष	१३७
फलों का श्लेष	१३८
चौसर का श्लेष	१३९
१६—बालमुकुन्द गुप्त	१३९
अखबार	१३९
१७—बाबू राधाकृष्णदास	१४८
हिन्दी क्या है ?	१४८
१८—राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' बी० ए०,	
बी० एल०, एम्० आर० ए० एस०	१५३
चन्द्रकला भानुकुमार नाटक	१५५
साहित्य-हत्या	१७७

१-मंशी सदासुख (सुखसागर)

इनका जन्म संवत् १८०३ में दिल्ली में हुआ। पूर्वजों के समय से दिल्ली में मंसबदारी चली आती थी, मुगलराज्य के पतनकाल में प्रयाग में आ बसे। यहाँ आकर नवाब जखनऊ की ओर से प्रयाग के अखबारनवीस हो गये। जब प्रयाग अंग्रेजों के हाथ आया, अंग्रेजों की सरकार के इन्हें तहसीलदार का पद मिला। फारसी उर्दू की कविता में सौदा के शिष्य थे। फारसी, अरबी, हिन्दी, संस्कृत चारों भाषाओं के अगाध विद्वान् थे। हिन्दी, उर्दू और फारसी तीनों में कविता अच्छी करते थे। अब्दुलकासिम फिरिश्ता के खण्डन में एक वृहत् इतिहास-ग्रन्थ फारसी में लिखा है जिसकी प्रशंसा इलियट (Eliot) ने की है। वेदान्त पर कई पुस्तकें लिखीं। उर्दू में भागवत, रामायण, प्रबोधचन्द्रोदय छन्दोबद्ध किया। हिन्दी में विष्णुपुराण आदि कई पद्यग्रन्थ लिखे। यद्यपि कट्टर वैष्णव थे तथापि विचार बहुत उदार थे। सौदा की तरह निन्दात्मक कविता लिखने में सिद्धहस्त थे। इनके जो गद्यलेख हिन्दी के हैं उनमें शुद्ध तद्भव और तत्सम शब्द हैं। भाषा खड़ी बोली है। विदेशी शब्द एक भी नहीं आया है। जैसी भाषा बोलते वैसी ही लिखते थे। यदि संस्कृत-शब्द ठूसने का उद्योग होता तो “सतोगुणी” की जगह सत्त्वगुणी, बुद्धिवानों की जगह बुद्धिमानों लिखते। इन्हीं की कविता में “सत्त्व” और “बुद्धिमान” का प्रयोग हुआ है। इनके हिन्दी के लेख जो अब तक मिले हैं केवल नोट के ढङ्ग पर हैं। लेख के ढङ्ग पर नहीं है। इनकी मृत्यु १८८१ में हुई। उस समय तक उर्दू गद्य का जन्म भी नहीं हुआ था। उर्दू फारसी में “निसार” हिन्दी में “सुखसागर” उपनाम था। नाम में मिश्रबन्धुओं ने भूल की है।

सुरासुर-निर्णय

प्रसिद्ध योनि है। सुर देवता, असुर दैत्य, संज्ञा है। जो कहिये असुर दैत्य हैं, इस बात में दूषण है। कंस दैत्य न था, मनुष्य था; श्रीकृष्ण का मामा, उग्रसेन का बेटा था। तो इससे समझिये कि स्वभाव असुर है, मनुष्य होय कि अथवा देवता दैत्य होय। जिसमें तमोगुण विशेष वही असुर है, कोई न होय। प्रह्लाद दैत्य था, परन्तु स्वभाव उसका सतोगुणी था, उसे सुर जानना चाहिये। दुर्वासा ब्रह्मभूषि है, स्वभाव तमोगुणी था, उसे असुर जानना चाहिये। इसी भाँति सनीचर, मंगल भी हैं, और बहुत हैं, कहाँ तक कहिये। इन्द्र का भी स्वभाव रजोगुणी है, बहुत जाघा^१ उससे चूक हुई है, प्रसिद्ध है छिपा नहीं है, और अपने किये से लज्जा खींची^२ हैं, क्या हुआ जो देवतों का राजा है, खोटा है। श्रीमहाराज नरनायणजी, वृहस्पति सुरगुरु, और बहुत सन्त हैं। इनकी सतोवृत्ति हैं। देवता दैत्य एक ही है, निस्सन्देह, स्वभाव करके वे दैत्य कहलाये, ये देवता कहलाये। दैत्य पूर्वदेव^३ हैं, जैसे हिरण्याक्ष हिरण्यकश्यप, शुभ-निशुभ, जालान्धर महाबलवान्, स्वभाव राजसी बहुत हैं, उदार शूर, गर्ववान्। इसमें अपनी ही खोट है कि अहंकार करके और अपने पराक्रम के गर्व से नारायण-आश्रित नहीं हैं, स्वाधीन हैं। और देवता आर्तवन्त^४ हैं, कष्ट पायकर नारायण की शरण जाते हैं। श्रीमहाराज को अपने बाने की लाज से उनकी सहाय करनी होती है। राजा बलही की अवस्था से विचार लीजिये कि उसमें कौन खोट थी, सब गुण ही थे, बाँधा गया। जो लीला पुरुषोत्तम भगवान् अवतार धारकर उनका संहार करते हैं, सो वे धन्य प्राणी हैं कि जो अपने पराक्रम और बल से बिना हाथ बाँधे

^१जगह। ^२‘लज्जा खींचना’ फारसी का मुहाविरा है। ^३पहले के देवयोनि के। ^४पीड़ा होने पर दुहाई देते हैं।

वो बिना बिनती किये बरियाई^१ महाराज से मुक्ति जो अति परम पद है ले लेते हैं। महाराज गुणग्राहक हैं। उनकी शूरता और उदारता से प्रसन्न होकर कृपा करके देते हैं। प्रह्लाद भक्ति करके उस पद को प्राप्त हुए, हिरण्यकश्यप विरोध करके प्राप्त हुआ। मोक्षपद के अधिकारी दोनों हुये। अस्तु, सब को अभिलाष उसी पद की है। राजा बलि भी तो दैत्य था, वह इन्द्र किस भाँति होवेगा ? और जो वह सुतलका राजा है, किस भाँति है ? सो यह समझिये कि जो दैत्य भी है और स्वभाव उसका सलगुणी है, वह देवता ही है, इसमें सन्देह नहीं। यह हम लोगों की मूर्खता है कि जो पराक्रमी हैं, कि जिनकी मुक्त होत आप अवतार लेते हैं, और हम लोग इस मिस करके उनके गुणानुवाद करते हैं और उद्धार होते हैं, कैसी बुरी बात है, जो ऐसे परउपकारी संत हैं, जिनकी स्तुति किया चाहिये, उनकी निन्दा^२ कीजिए सो हम लोग मूढ़ हैं और वे लोग संत हैं कि जिनको अहर्निश भगवान का ध्यान विरोध करके रहा। और महाराज तो न किसी की स्तुति से प्रसन्न, न किसी की निन्दा से दुःखित। वहाँ निन्दा स्तुति की समाई नहीं है, परन्तु है क्या कि जीव को उचित है कि ईश्वर को स्तुति अपनी कामना हेत करे। वे लोग तो आप देववृत्ति तारायन^३ हुए हैं। हम लोग जो है, हमारा निर्वाह प्रार्थना अधीनता करके है। वह पराक्रम हममें कहाँ है कि हिरण्यकश्यप सहस्र वर्ष तप में मगन रहा, उसका शरीर मिट्टी में मिल गया, चूहे मूँसों ने उसके शरीर में बिल किये। यह उन्हीं लोगों से बन आवे^४ न। अपने पराक्रम के बल से मुक्त पद महाराज हरि से बरियाई लेते हैं। आदिदेव ब्रह्मा, विष्णु

^१बलपूर्वक। ^२निन्दा। ^३भवसागर से तारने वाले। ^४आता है।
बोलचाल में अबतक सहारनपुर की ओर 'आवे हैं' बोलते हैं। कबि तो अब तक ऐसा प्रयोग करते हैं।

महेश*...सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन, लक्ष्मी सप्तऋषि वो धर्मराज, इन्द्र, बरुण, कुबेर आदि बहुत हैं कि सब लोग देवपद को प्राप्त हैं । *...विद्याधर, गंधर्व, किन्नर, जम्बू, दैत्य, पिचास, प्रेत भी सब देवयोनि है । इनमें और देवता में कुछ अन्तर नहीं कैसे कि जैसे मनुष्य में देवता ब्राह्मण है और चांडाल प्रेत हैं, उनकी शांति में अन्तर नहीं है, मनुष्य दोनों हैं । ब्राह्मण का लोग चरणोदक लेते हैं और चांडाल का जो स्पर्श होता है तो सचैल^१ स्नान करना होता है । हेतु आचरण का । वह आरोपित है, वास्तव नहीं है । ब्राह्मण की क्रिया, सतोवृत्ति, अचल, निर्मल रहना, वेदपाठ, यजन याजन, विद्या, तप, सन्तोष, निर्लोभ, निरहंकार, निर्दमपाखण्ड । चांडाल की क्रिया जीवों का हनन करना, दुख देना, अच्छी बात न सुनना, सज्जन लोगों के निकट न बैठना, केवल उदरपोषण करना, व्यभिचारी, पराये धन पर दृष्टि रखना । वह स्वभाव ब्राह्मण का यह स्वभाव चांडाल का । जिसमें वह गुण और यह अवगुण होय वही ब्राह्मण, वह चांडाल, कोई क्यों न होय ब्राह्मण के यहाँ से किसी को चिट्ठी पत्री नहीं लिखी आयी है कि वह ब्राह्मण है और यह चांडाल है । जो यह कहो कि संस्कार करके ब्राह्मण और चांडाल होता है, तो व्यास जी नारायण के अवतार हैं धीमरी के पेट से जनमें हैं । नारद जी दासीसुत, वाल्मीकिजी पूर्व चांडाल थे । इसी भाँति बहुत संत हैं । ये लोग नारायण के समीपी क्योंकर हुए । और संसार बरनसंकर है, ब्राह्मण चांडाल की निर्णय^२ भी न्याय के लिये होती है । तो इससे जाना गया संस्कार का भी प्रमाण नहीं, आरोपित उपाधि हैं । जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष

*इस जगह उक्त शिकशत के दो शब्द पढ़े नहीं जाते । कीदों ने भी कुछ इसजाह कर दी है ।

^१कपड़े पहने ।

^२अब निर्णय पुसिंजग है ।

में चांडाल से ब्राह्मण हुए, और जो क्रिया भ्रष्ट हुई वह तुरन्त ही ब्राह्मण से चांडाल होता है ।

यद्यपि ऐसे विचार से हमें लोग नास्तिक कहेंगे, हमें इस बात का डर नहीं, जो बात सत्य होय उसे कहा चाहिये, कोई बुरा माने कि भला माने । विद्यो इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य उसका सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप में लय हुआये । इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कहते लोगों को बहकाइये और फुसलाइये और असत्य छिपाइये, व्यभिचार कीजिये, और सुरापान कीजिये और धन-द्रव्य इकठोरा^१ कीजिये और मन को कि तमोवृत्ति से भर रहा है उसे निर्मल न कीजिये । तोता है, सो नारायण का नाम लेता है परन्तु उसे ज्ञान तो नहीं है ।

धन्य कहिये राजा दधीचि को कि नारायण की आज्ञा अपने सीस पर चढ़ायी, अपने हाड़, ऐसे कामी कुटिल अहंकारी को दे दिये कि उसने उन हाड़ों का बज्र बनाय कर वृत्रासुर से शानी से युद्ध किया और उसे मारा । जो महाराज की आज्ञा और दधीचि के हाड़ का बज्र न होता तो ग्यारह जनम ताई^२ वृत्रासुर से युद्ध में सरबर और प्रबल न होता और जय न पावता ।

धन्य कहिये राजा अम्बरीष को कि दुर्वासा ने उन्हें ईर्षा करके इतना सताया, उनके मन में पछुताव ही रहा कि ब्राह्मण मुझसे उदास हो गया है बरस भर अन्न मुंह में न डाला, जब ताई दुर्वासा हार मानके उनके यहाँ न आया । यद्यपि महाराज ने उनकी सहाय की, उनको इस बात का दर्ष, न हम बात का शोक । वे अपने स्वभाव करके सतोगुणी ही थे । यहाँ दुर्वासा का ब्राह्मणत्व उत्तम जानिये कि राजा का क्षत्रियत्व ? विचारिये, बुद्धि तो बड़ा पदार्थ है, उससे विचारिये ।

परउपकारी कहिये राजा भगीरथजी को, कैसे कैसे कष्ट अंगीकार करके और अपना राजसुख समस्त त्याग करके परायी मुक्ति

के हेतु गङ्गाजी को भूलोक में लाये । आज ताईं उनका जस प्रसिद्ध है । गङ्गाजी का नाम भागीरथी है ।

धन्य कहिये राजा पृथुजी को, नारायण के अवतार हैं, कि जिन्होंने पृथ्वी मथन करके अन्न उपजाया, ग्राम नगर बसाय और किसी से सहाय न मांगी, कि किसी और से सहाय चाहेंगे तो उसे दुख होयगा, यह दुख आपको इस हेतु अपने पराक्रम से जो कुछ बन आया सो किया, फिर कैसा कुछ किया कि इसका नाम पृथ्वी राजा पृथु के नाम से प्रसिद्ध है । ये सब छुत्री ही हुए हैं । वेद पुराण शास्त्र सर्व विद्या इन्हीं के हेतु बुद्धिमानों ने बनायी हैं, किसी बनिये शूद्र के हेतु नहीं बनायी हैं । छुत्री ब्रह्मभृषि; शिवसेवी भी उनकी टहल करते थे । वे लोग ऐसे सुखी हुए कि पोथी पुस्तक के मिस करके उनका जस कीर्ति कहते थे, जो हम से खल निपट इस समय उनकी कथा वार्ता सुन के कृतार्थ होते हैं । राजा छुत्री होय कि अथवा म्लेच्छ, तप नहीं किया होय और आप सन्त ज्ञानी सेवी होय, वह निस्सन्देह मुक्त रूप है इसमें कोई सन्देह नहीं । सो इस छोटे काल में न कोई ब्राह्मण ही ऐसा है, न कोई क्षत्री ही वैसा है, केवल अमावस की रैन का अन्धकार यह अभाग काल हमारी लूट में है । जो हरि ही की कृपा होय तो हम सब जो हैं तिनका उद्धार होय, नहीं तो न हम इस योग्य हैं कि उनकी टहल करें और न वे ऐसे हैं जो हमसे लूलो लँगड़ों को बाँह पकड़कर पार उतारें, देखिये हरि इच्छा क्या है । समय आन पहुँचा और यहाँ आसरे हरि के । और कोई अवलम्बन आसरा नहीं है । बहकानेवाले बहुत हैं । नमो सच्चिदानन्द ।

अथ वार्त्तिक

बोहा—हरि गुरु सन्तन को अमल, चरन कमल मकरन्द ।

मस्तक धरि कछु कहत हौं, नमों सच्चिदानन्द ॥

यह अंश बाबा दयालुदास के दो ध्रुवपदों की व्याख्या में लिखा

प्रथम ध्रुवपद में जो बाबा साहब ने परमाणु से लेकर आदि कल्प ताईं कहा तो नारायण को कालरूप करके बखाना, यह वैशेषिक मत है। मन अनेक हैं। मीमांसक नारायण को कर्मरूप करके कहते हैं। पातंजल पवनरूप कहते हैं। शून्यवादी आकाशरूप कहते हैं। बौद्ध पञ्चरूपभूत करके कहते हैं। जितने शास्त्र हैं सब सत्य कहते हैं। जैसे प्रतिबिम्ब पानी में भी दिखाई देता है। हलन्वी^१ दरपन में भी दिखाई देता है। परन्तु उत्तम, मध्यम, निकृष्ट विचारना अपनी अपनी बुद्धि का काम है। दृष्टान्त—कितने जन्मान्ध किसी गाँव में बसते थे। वहाँ हाथी आया निकला। जितने अन्धे थे यह बात सुनकर बहुत फूले और मुदित हुए, सब मिलकर कहने लगे कि चलो हाथी देखिये। सब मिलकर आये। आँखों से तो अन्धे थे। किसी ने सूँड़ पकड़ी हाथ से, उसने कहा—हाथी अजगर के बराबर है। किसी ने उसकी पूँछ पकड़ी, उसने कहा—साँप के बराबर है। एक ने उसके पाँव पकड़े, उसने कहा हाथी खम्भे के बराबर है। एक ने उसके कान पकड़े उसने कहा हाथी लुआ के^२ बराबर है। एक ने उसके दाँत पकड़े, उसने कहा हाथी खूँटियों के (?) बराबर है। वह जो ऊपर हम लिख आये सब अन्धों के हाथी हैं। और सुम्नाके का^३ हाथी

हुआ मिला। ध्रुवपद ठीक पढ़े न जा सके इसीलिए यहाँ नहीं दिये गये। इनके हिन्दी के लेख फारसी के शिकस्त अक्षरों में होने से बड़ी कठिनाता से पढ़े जाते हैं। जहाँ तहाँ कीर्षों ने भी कृपा की है जिससे कठिनाई तिगुनी हो जाती है।

^१हलब, जिसे अँगरेजी में अलेप्पो (Aleppo) कहते हैं, वर्षाओं के लिए प्रसिद्ध था।

^२सूप। ^३सुम्नाका अर्थात् आँखवाला। “लड़का” सरीखे शब्दों में इस प्रकार क्रिया से संज्ञा का बहना देखा जाता है, पर अब “सुम्नाका” शब्द का प्रयोग देखने में नहीं आता।

साक्षात् प्रत्यक्ष दिखाई देता है, सच्चिदानन्द, वह छिपा हुआ नहीं है पर आँखें हृदय की खुली चाहिये। सब रूप और नाम नारायण ही के हैं अथवा एक भी नहीं। जो सूत को विचारिये तो मऊ, ढाका, चंदेली^१ भी सत्य है। जो सूत ही का भाव गया तो वे भी सब कहाँ हैं? स्थूल भी वही है और सूक्ष्म भी वही है। जो जल है तो बूंद भी जल है, और समुन्दर भी जल है और जो जल ही नहीं तो सब मृगतृष्णा है।

दूसरे ध्रुवपद में वेदान्त का मत लेकर कहते हैं जिसे ब्रह्म कहते हैं वह निर्वाण पद है, निरुपाधि है, चेतन है, मन चित्त बुद्धि अहङ्कार से परे है, मोक्ष बन्धरहित केवल अवाच्य पद है। ब्रह्म पद पद में समाई किसी वस्तु की नहीं।

आशङ्का—तुमने जो कहा निरुपाधि है और चेतन है। तो यह जगत असत्य उसकी सत्ता से स्थित है। बिना चिद के प्रवृत्ति असम्भव है। बिना उपाधि आरोपण बनता नहीं।

उ०—जब ताई^२ वह अवाच्य पद अपने एक रूप में लय है तब ताई उसका नाम है न रूप है, वहाँ किसी पन की समाई नहीं। जिस समय उसने अपनी इच्छा की पौन के लगाने से कहा कि ‘अहं ब्रह्म’ उसी समय अज्ञान के परिणाम से त्रिविध रूप हो गया महावाक्य कि इसे रामतारकमन्त्र और राजमन्त्र भी कहते हैं इसका साक्षी है, तत्त्वमसि^३।

^१मऊ, ढाका, चंदेली आदि स्थान बढिया कपड़ों के लिये इतने प्रसिद्ध थे कि लक्ष्यार्थ से इन शब्दों से कपड़ों का प्रकार समझा जाता था अब “हालेण्ड” “रांजी” (“ग्यंजी” Guernsey) “कनानोर” आदि स्थानवाचक शब्द कपड़े के नाम इसी रीति से समझे जाते हैं।

^२वह तू है, ‘सो तैं, ताहि तोहि नहिं भेदा। बारि बीचि इक् नावहिं वेदा।’—तुलसी।

२—सैयद इंशाअल्लाह खॉ

सैयद इंशाअल्लाह खॉ नाम और इंशा उपनाम था। मुसलमान कवियों में यह अपूर्व विद्वान् प्रतिभाशाली और बहुभाषाविद् हो गया है। जन्मकाल अनिश्चित है। दूसरे शाहआलम के समय में मुरशिदाबाद से दिल्ली आया। राजमान्य हुआ अन्य राजकवियों से अच्छा समझा गया। परन्तु नेत्रहीन मुगल सम्राट अङ्गरेजों से पेन्शन पाने लगा था। दिल्ली पतन हो चुका था। स्तकार बहुत था, पर इंशा सन्तुष्ट न हुआ, अन्ततः लखनऊ आया। कुछ दिनों नवाब सम्राटअली खॉ के यहाँ बड़ा आदर था, परन्तु सभा में किसी समय इसके मुँह से कोई अनुचित बात निकल गयी जिससे नवाब की निगाहों से गिर गया। सम्वत् १८७४ में मृत्यु हुई। हिन्दी भाषा में 'रानी केतकी की कहानी' इसने यह प्रतिज्ञा करके लिखी थी कि विदेशी शब्द एक भी न आवे। भाषापन अर्थात् व्रजभाषापन भी न हो। सारांश यह कि जिसे आज खड़ी बोली कहते हैं, उसके शुद्ध रूप में उसने लिखने का प्रयत्न किया। शब्द तो विदेशी नहीं आये पर मुहावरे और प्रयोग अनेक स्थलों में विदेशी हैं। अनुप्रासों को ठूँसने के लिए अनावश्यक शब्द लाये गये हैं। गद्य में जिस प्रकार अनुप्रास लाये हैं वह ढंग फारसी अरबी और तुर्की का है। विदेशी शब्दों से बचने के अत्यधिक उद्योग से अस्वाभाविकता आ गयी है। शुद्ध हिन्दी उसकी अपनी भाषा भी न थी।

यह ठीक पता नहीं लगता कि कहानी कब लिखी गयी। पढ़कर अनुमान होता है कि दिल्लीबास के अन्त में लिखी होगी और कलकत्ते बास के पहले।

रानी केतकी की कहानी

सिर झुका कर नाक रगड़ता हूँ उस अपने बनानेवाले के साम्हने जिसने हम सब को बनाया और बात की बात में वह कर दिखाया जिसका भेद किसी ने न पाया । आतियाँ^१ जातियाँ जो साँसें हैं उसके बिन ध्यान यह सब फाँसें हैं । यह कल का पुतला जो अपने उस खेलाड़ी की सुध रखे तो खटाई में क्यों पड़े और कड़वा कसैला क्यों हो ! उस फल की मिठाई चक्खे जो बड़ों से बड़े अगलों ने चक्खी हैं । देखने को तो आँखें दीं और सुनने को यह कान दिये, नाक भी ऊँची सब में कर दी । मरतों को जीदान दिये । मिट्टी के बासन को इतनी सकत^२ कहाँ जो अपने कुम्हार के करतब कुछ ताड़ सके । सच है जो बना हो सो अपने बनानेवाले को क्या सराहे और क्या कहे, यों जिसका जी चाहे पड़ा बके । सिर से गला पाँव तक जितने रोंगटे हैं जो सब के सब लोग उठें और सराहा करें, और इतने बरस इसी ध्यान में रहें जितनी सारी नदियों में रेत, और फूल फलियाँ खेत में हैं, तौ भी न हो सके, सराहा करें ।

अब यहाँ से लिखनेवाला यों लिखता है कि एक दिन बैठे बैठे यह बात अपने ध्यान चढ़ी, कोई कहानी ऐसी कहिये जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोल की पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप खिले, बाहर की^३ बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो । अपने मिलनेवालों में से एक कोई पढ़े लिखे पुराने धुराने

^१‘आनेवाली जानेवाली । पञ्जाबी बोलचाल में अब भी ऐसे प्रयोग आते हैं । सौ बरस पहले की कविता में भी इसके उदाहरण मिलते हैं ।

उ०—“वह सूरतें इलाही किस देश बस्तियाँ हैं । जिनको कि देखने कूँ आँखें तरस्तियाँ हैं ।”

^२शक्ति । ^३नाई, तरह, समान ।

डाग^१ बड़े घाग^२ यह खटराग^३ लाये, सिर हिला कर मुँह ठठिया कर^४ नाक भौं चढ़ा कर आँखें पयराकर लगे कहने, यह बात होती दिखाई नहीं देती, हिन्दीपन भी न निकले, और भाखापन भी न ठुस जाय, जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते चालते हैं, ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे, और छुई किसी की न पड़े, यह नहीं होने का। मैंने इनकी ठण्डी साँस की फाँस काटहोका^५ खाकर भुँभला कर कहा—मैं कुछ ऐसा बड़ा बोला नहीं जो राई को पर्वत कर दिखाऊँ और भूठ सच बोल के उँगलियाँ नवाऊँ और देहुरी पे ठिकाने की उलभी सुलभी तान ले जाऊँ, जो मुझसे न हो सकता तो भला यह बात मुँह से क्यों निकालता, जिस ढव से होता इस बखेड़े को टालता।

अब इसकी कहानी का कहने वाला यहाँ आपको जताता और जैसा कुछ लोग उसे पुकारते हैं, सुनाता है। दहना हाथ मुँह पर फेर आपको जताता हूँ, जो मेरे दाता ने चाहा तो वह तावभाव और राव-चाव^६ और कूदफाँद और लपट भपट दिखाऊँ, जो देखते ही आपके ध्यान का घोड़ा जो बिजली से भी बहुत चंचल चपलाहट में है हिरन के रूप अपनी चौकड़ी भूल जाय।

चौतुकाळ

‘घोड़े’ प अपने चढ़के जो आता हूँ मैं,
करतब जो है सो सब दिखाता हूँ मैं।

^१पुराने खयाल के, दकियानूसी आदमी। ^२चालाक, धूर्त।

^३खटराग, बखेड़ा, संकट, आपत्ति। ^४दाँत निकाल कर।

^५पता लगाकर। ^६रङ्गढङ्ग।

*अरबी का ‘रुवाई’ छन्द है। रुवाई का अर्थ है नौपाई परन्तु छन्द भिन्न है, अर्द्धसमवृत्त है।

उस चाहनेवाले ने जो चाहा तो अभी,
कहता जो हूँ कर दिखाता हूँ मैं ॥

आना जोगी महिन्दरगिर का कैलास पर्वत से और हिरन हिरनी कर डालना कुँवर उदयभान और उसके मा बाप को^१

जगतप्रकाश अपने गुरु को जो कैलास पहाड़ पर रहता था यों लिख भेजता है—कुछ हमारी सहाय कीजिए । महाकठिन हम विपता-मारों को पड़ी है । राजा सूरजभान को अब यहाँ तक बावजक ने लिया है जो उन्होंने हमसे महाराजों से नाते का डौल किया । कैलास पहाड़ का एक डाल चाँदी का है, उस पर राजा जगतप्रकाश का गुरु जिसको इन्द्र-लोक के लोग सब महिन्दरगिर कहते थे, ध्यान ज्ञान में कोई नब्बे लाख अतीतो^२ के साथ ठाकुर के भजन में दिन-रात रहा करता था । सोना रूपा तंबि रांगे का बनाना तो क्या, और गुटका मुँह में लेके उड़ना बरे^३ रहै, उसको और और बातें इस इस ढब की ध्यान में थीं जो कुछ कहने और सुनने से बाहर हैं । मेह सोने और रूपे का बरसा देना, और जिस रूप में चाहना हो जाना, सब कुछ उसके आगे एक खेल था और गाने में और बीन बजाने में महादेव बिन^४ सब उसके आगे अपने कान पकड़ते थे । सरस्वती जिसको हिन्दू कहते हैं । आदि शक्ति उसने उसीसे कुछ कुछ गुनगुनाना सीखा था । उसके सामने छै राग, छत्तीस रागनियाँ आठ पहर बाँदियों^५ का सा रूप धारे हुए उसकी सेवा में हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं । वहाँ अतीतों को यह कह कह पुकारते थे—भैरोगिर, भास्करगिर, हिरण्योलगिर, मेघनाथ किदारनाथ, दीपकसेन, जोतसरूप, सारङ्गरूप और अतीत ने इस ढब

^१ इस तरह अभ्यास का नाम देना शुद्ध फारसी की रीति है ।

^२ गुसाई, त्यागी । ^३ दूर । ^४ महादेव को छोड़ । ^५ लौबियों का ।

से कहलाती हैं—गूजरी, टोड़ी, असावरी, गौरी, मालसिरी, बिलावल जब चाहता था, अधर में सिंहासन पर बैठ के लदाये फिरता था, और नब्बे लाख अतीत गुटके अपने मुँह में लिये गेरुवे वस्त्र पहने हुए जटा बिखरे उसके साथ होते थे । जिस घड़ी राजा जगत्प्रकाश की चिट्ठी एक बगला ले पहुँचता है, जोगी महिन्दरगिर एक चिघाड़ मार के दलबादलों को दुलका देता है । बाघम्बर पर बैठे भभूत अपने मुँह में मल कुछ-कुछ पदन्त^१ करता हुआ, पवन के घोड़े की पीठ लगा, और सब अतीत मृगछालों पर बैठे हुए गुटके मुँह में लिये हुए बोल उठे—गोरख जागा । एक आँख की भूपक में यहाँ आ पहुँचता है जहाँ दोनों महाराजों में लड़ाई हो रही थी । पहले तो एक काली आँधी आई, फिर एक बड़ी टिड्डी^२ आयी, किसी को अपनी सुध-बुध न रही, हाथी घोड़े और जितने लोग और भाड़भाड़ राजा सूरजभान की थी कुछ न समझ गया किधर गयी और इन्हें कौन उठा ले गया । और राजा जगत्प्रकाश के लोगों पर और रानी केतकी के लोगों पर केवड़े की बूँदों की नन्हीं-नन्हीं फुहार सी पड़ने लगी । जब यह सब कुछ हो चुका तो गुरुजी अपने अतीतों से कह दिया—उदयभान, सूरजभान, लक्ष्मीबास इन तीनों को हिरन हिरनी बना के किसी बन में छोड़ दो, और जो इनके साथी हों उन सभी को तोड़फोड़ दो । जैसे कुछ गुरुजी ने कहा झटपट वैसा ही किया । प्रात का मारा कुँवर उदयभान और उसका बाप वह महाराजा सूरजभान और उसकी माँ वह महारानी लक्ष्मीबास हिरन-हिरनी बन, बन-बन की हरी घास कई बरस तक चुनते रहे, और उस भीड़भाड़ का तो कुछ थलबेड़ा न मिला जो किधर गयी और कहाँ थी ।

यहाँ की यहाँ ही रहने दो, आगे सुनो अब रानी केतकी की बात और महाराजा जगत्प्रकाश की । इनका घर का घर गुरुजी के पाँवों पर गिरा और सबने सिर झुकाकर कहा,—महाराज यह आपने

^१पदन्त । ^२टिड्डीदल ।

बड़ा काम किया हम सबको रख लिया । जो आज आप न आ पहुँचते तो क्या रहा था । सबने मर मिटने की ठान ली थी । राज पाट सब हमारा अब निछावर करके जिसको चाहिए दे डालिये । हम सबको अतीत बना के अपने साथ लीजिये । राज हमसे नहीं थम सकता । सूरजभान के हाथ से आपने बचाया, अब कोई इनका चचा चन्दरभान चढ़ आवेगा तो क्योंकि बचना होगा । अपने आप में तो सकत नहीं, फिर ऐसे राज का फिट्टे^१ मुँह, हम कहाँ तक आपको सताया करेंगे । यह सुनकर जोगी महिन्दरगिरि ने कहा—तुम सब हमारे बेटे बेटी हो, आनन्द करो, दनदनाओ, सुख चैन से रहो, ऐसा वह कौन है जो तुम्हें आँख भरकर और ढब से देख सके । यह बाघम्बर और यह भभूत हमने तुम्हें दिया, आगे जो कुछ ऐसी गाढ़ पड़े तो बस बाघम्बर में से एक रोंगटा तोड़कर आग पर धरके फूँक दीजियो । वह रोंगटा फुकने न पावेगा हम आन पहुँचेंगे । रहा भभूत सो इसलिये है, जो कोई चाहे जब इसे अञ्जन करे वह सब देखे और उसे कोई न देखे, जो चाहे कर ले । धन गुरु महिन्दरगिरि जिसके पाँव पूजिये और धन महाराज कहिये । उनसे तो कुछ छुपाव न था, महाराज जगत्प्रकाश उनको मोरछल करते हुए रानियों के पास ले गये । सोने रूपे के फूल में हीरे मोती गोद भर भर सबने निछावर किये, और माथे रगड़े । इन्होंने सबकी पीठें ठोकी । रानी केतकी ने भी दण्डवत् की, पर जी ही जी में गुरुजी को बहुत सी गालियाँ दीं, गुरुजी सात दिन सात रातें यहाँ रह के राजा जगत्प्रकाश को सिंहासन पर बैठा के अपने उस बाघम्बर पर उसी ढील से कैलास पर आ धमके । राजा जगत्प्रकाश अपने अगले ढब से राज करने लगा ।

^१मुँह फूँके, मुँह फुलसे (नीरसता व कुस्वाह से मुँह बिगड़ने को मुँह फिट्टा हो जाता कहते हैं ।)

हिरन और हिरनियों के खेल का बिगड़ना और नये सिर से कुँवर उदयभान का रूप पकड़ना ।

एक रात राजा इन्दर, गुसाईं महिन्दरगिर निखरी हुई चाँदनी में बैठे राग सुन रहे थे । करोड़ों हिरन आस पास आनके राग के ध्यान में चौकड़ी भूले सिर झुकाये खड़े थे । इसमें राजा इन्दर ने कह दिया, इन सब हिरनों पर पढ़ के “मेरी सकत गुरु की भगत पुरोमंत्र ईश्वरोवाच” एक एक छींटा पानी का दो । क्या जानें वह पानी कैसा था । पानी के छींटे के साथ ही कुँवर उदयभान और उनके मां बाप तीनों जाने हिरनों का रूप छोड़कर जैसे थे वैसे हो जाते हैं और अपने पास बड़ी आवभगत से बैठाते हैं और वही पानी का घड़ा अपने लोगों को देकर वहाँ भिजवाते हैं जहाँ सिर मुँड़ाते ही ओले पड़े थे । राजा इन्दर के लोग जो पानी के छींटे वही ईश्वरोवाच पढ़के देते हैं, जो जो मर मिटे थे सब उठ खड़े होते हैं और जो जो अध-मुए होके भाग बचे थे सब सिमट आते हैं । राजा इन्दर और महिन्दरगिर, कुँवर उदयभान और सुरजभान और रानी लक्ष्मीबास को लेकर एक उड़न खटोले पर, बैठ के बड़ी धूमधाम से उनको अपने राज पर बैठा के ब्याह के ठाट करते हैं । सेरों हीरेमोती उन सब पर निछावर होते हैं । राजा सुरजभान और उदयभान और उनकी माँ रानी लक्ष्मीबास चित-चाही आस पाकर फूले अपने में नहीं समाते और सारे अपने राज को यही कहते जाते हैं, जौरे भौरे के मुँह खोल दो^१ और जिस जिसको जो जो उकत सूँके बोल दो । आज के दिनसा और कौन सा दिन होगा हमारी आँखों की पुतलियों का जिससे चैन है, इस लाड़ले इकलौते का ब्याह और हम तीनों का हिरनी के रूप से निकलकर फिर राज पर बैठना । पहले तो यह चाहिये, जिन् जिनकी बेटियाँ बिन ब्याही कुंवारी

^१सब को मनचाही कहने की स्वतन्त्रता दे दो ।

हो उन सबको इतना कर दो जो अपना जिस जिस चाबचोज में चाहें^१ अपनी अपनी गुड़ियाँ सँवार के उठा दें^२ और जबतक जीते रहें हमारे यहाँ से सब के सब खाया पिया करें और राजभर की बेटियाँ सदा सुहागनें बनी रहें और सूहे राते^३ छुट कभी कोई कुछ न पहना करें और सोने रूपे के क़िवाड़ गङ्गाजमुनी सब घरों में लग जावें, सब कोठों के माथों पर केसर और चन्दन के टीके लगे हों और जितने पहाड़ हमारे देश में हों उतने ही रूपे सोने से पहाड़ ग्रामने सामने खड़े हो जावें, और सब की चोटियाँ मोतियों की माँग से विन माँगतागे भर जावें और फूलों के गहने और बन्दनवार से सब भाड़ पहाड़ लदे फँदे रहें और इस राज से उस राजतक अधर में छात सी बाँध दो, चप्पा चप्पा कहीं न रहे^४, जहाँ धूमधड़कका भीड़भड़कका न हो, और यह डौल कर दो जो जिधर से दूल्हे को ब्याहने चढ़े सब लालड़ी और हीरे और पुखराज की इधर उधर कंवल की टट्टियाँ बँध जायें और क्यारियाँ सी हो जायें जिनके बीचों बीच से ही निकलें और कोई डांग और पहाड़तली का उतार चढ़ाव ऐसा दिखाई न दे जिनकी गोद पखौटों और फूल फलों से भरी भतूली न हो।

राजा इन्दर का ठाट करना उदयभान के ब्याहने के लिये

राजा इन्दर ने कह दिया वह अपछारायें चुलबुली जो अपनी जोबन के मद में उड़ चली हैं उनसे कह दो^५ सोलह सिंगार बाल बाल गज-मोती पिरोवों। अपने अपने अचरज और अचम्भे के उड़नखटोलों की

^१जैसे इच्छा करें। ^२ब्याह कर दें। ^३खाल।

^४खाली आकाश कहीं न रह जाय।

^५आदि से अंततक “कि” का प्रयोग नहीं हुआ है। “कि” संस्कृत के किम् का प्राकृत रूप है। इंशा ने विदेशी शब्द समझ कर छोड़ दिया।

क्यारियाँ और फुलवारियाँ सी सैकड़ों कोस तक हो जायें और ऊपर ही ऊपर मिरदंग, बीन, जलतरंग, मुँहचंग तबले, करताल, और सैकड़ों इस ढव के अनोखे बाजे बजते आयें और उन क्यारियों के बीच में हीरे, पुखराज अनबेधे मोतियों के भाड़ और लालटैनों की भीड़भाड़ भूम-भूमादृष्ट दिखाई दे और उन्हीं लालटैनों में से हथफूल, फुलझड़ियाँ-जाही, जूहियाँ, कदम, गेंदा, चमेली इस ढव से छूटें जो देखतों की छातियों के किवाड़ खुल जाय और पटाखे जो उछल उछल के फूटें उन-में से हँसती सुपारी और बोलते पखाटे दुलदुल पड़े और जब तुम सबको हँसी आवे तो चाहिये उस हँसी से मोती की लड़ियाँ भड़े जो सब से सब उनको चुन चुन के राजराजे हो जावें। डोमनियों के रूप में सारंगियाँ छेड़ छेड़ सोहले गाओ, दोनों हाथ हिलाओ, उंगलियाँ नचाओ। जो किसी ने सुने हों वह ताव भाव, आव जाव, राव चाव दिखाओ, ठुडियाँ कपकपओ और नाक भवे तान मान भाव बताओ, कोई फूटकर रह न जाओ, ऐसा जमाव लाखों बरस में होता है। जो जो राजा इन्दर ने अपने मुँह से निकाला था, आँख भ्रमक के साथ वह होने लगा और जो कुछ उन दोनों महाराजों ने कह दिया था सब कुछ उसी रूप से ठीक ठोक हो गया। जिस व्याह की यह कुछ फैलावट और जमावट और रचावट ऊपर तले इस जमघटे के साथ होगी उसको और भी कुछ फैलावा होगा यह ब्यान कर लो।

ठाट करना गुसाईं महिन्दरगिर का

जब कुंवर उदयभान को उस रूप से व्याहने चढ़े और वह ब्राह्मण जो अंधेरी कोठरी में मुँदा हुआ था उसको भी साथ ले लिया और बहुत से हाथ जोड़े और कहा—ब्राह्मण देवता हमारे कहने सुनने पर न जाओ, तुम्हारी जो रीति होती चली आयी है बताते चलो। एक उड़न

खटोले पर वह भीरीत बताने को साथ हुआ । राजा इन्दर और गुसाईं महिन्दरगिर ऐरावत हाथी पर भूमते भूमाते देखते भालते सारा अखाड़ा लिये चले जाते थे । राजा सूरजभान दूल्हे के घोड़े के साथ माला जपता हुआ पैदल था । इतने में एक सन्नाटा हुआ । सब के सब जोगी बने हुए मोतियों की लड़ियों के सेली-तागे गलों में ढाले गातियाँ उसी ढब की बांधे मृगछालों और बाघम्बरों पर आ टपके । लोगों के जियों में जितनी उमंगें छा रही थीं, वह चौगुनी पचगुनी हो गयीं । सुखपाल और चंडोलों पर और रथों पर जितनी रानियाँ और महारानी लछमीवास पीछे चली आती थीं, सबको गुदगुदियाँ सी होने लगीं, उसमें कहीं भरथरी का स्वांग आया, कहीं जोगी जैपाल आ खड़े हुए, कहीं महादेव और पारबती दिखाई पड़े, कहीं गोरख जागे, कहीं मछन्दरनाथ^१ भागे, कहीं मच्छ कच्च बराह सन्मुख हुए, कहीं बामनरूप, कहीं हरनाकुश और नरसिंह, कहीं राम लछमन सीता साम्हने आये, कहीं रावन-और लङ्का का बखेड़ा सारे का सारा दिखाई देने लगा, कहीं कन्हैयाजी का जन्माष्टी में होना और बसुदेव का गोकुल में ले जाना और उनका उस रूप से बढ़ चलना और गाये चरानी और मुरली बजानी और गोपियों से धूमें मचानी और राधिका का रस और कुबजा का बस कर लेना, कहीं बनसीवट चीरघाट वृन्दावन करील की कुञ्जबरसाने में रहना और उस कन्हैया से जो जो कुछ हुआ था सब का सब ज्यों का त्यों आँखों आना और द्वारका में जाना और वहीं सोने के घर बनाना और फिर ब्रज को आना और सोलह सौ गोपियों का तलमलाना साम्हने आ गया । उन गोपियों में से ऊधो का साथ पकड़ कर एक गोपी के उस कहने से सबको रुला दिया जो उस ढब से बोल के रूँधे हुए जी को खोलती थी ।

^१मत्स्येन्द्रनाथ जोगी का प्रसिद्ध नाम मछन्दरनाथ है ।

कवित्त

जब छाँड़ करील की कुंजन को हरि द्वारकाजीव मां जाय बसे ।
 कलधौत के धाम बनाय घने महाराजन के महाराज भये ॥
 तज मोर मुकुट अरु कामरिया कछु औरहि नाते जोड़ लये ॥
 धरि रूप नये किये नेह नये और गैयाँ चरायबो भूल गये^१ ॥



^१यहाँ छन्दोभंग हो गया। उर्दू के जिन कवियों ने हिन्दी के ढंग के छन्द लिखे हैं, ऐसे छन्दोभंग भी कर गये हैं। कलधौत—सोना चाँदी।

३—पं० लल्लूलाल जी

पं० लल्लूलाल नाम और “लाल” उपनाम था। गुजराती ब्राह्मण थे। जन्म-मरण का समय निश्चित नहीं है। परन्तु संवत् १८६० में इन्होंने प्रेमसागर लिखा। मिश्रबन्धुओं का अनुमान है कि इनका जीवन-काल १८२०—१८८१—१८८२ विक्रमी है। रहनेवाले आगरे के थे। मुर्शिदाबाद और कलकत्ते में नौकरी की। फोर्टविलियम कालेज में रहकर इन्होंने मिस्टर गिलक्रिस्ट के आदेश से खड़ी बोली में प्रेमसागर, सिंहासन-बत्तीसी, बैताल-पच्चीसी, आदि कई ग्रन्थ लिखे। विदेशी शब्द यह भी भरसक नहीं रखते थे, पर ब्रजभाषापन से इनका गद्य खाली नहीं है। इनके गद्य में भी अनुप्रासों की बहार है, पर इंशा की तरह अस्वाभाविकता नहीं है और विदेशी महावरे और विदेशी ढंग भी नहीं पाये जाते। सद्गल मिश्र के साथ साथ हिन्दी के गद्य के जन्मदाता समझे जाते हैं परन्तु इनके पहले खड़ी बोली का गद्य लिखा जाना आरम्भ हो चुका था; परन्तु इनको रास्ता साफ करने का यश अवश्य है। पहले के लेखकों से तुलना करने पर प्रकट होता है कि इनकी शैली अधिक पुष्ट हो चुकी थी और वाक्य-रचना के नियम वर्तमान रूप धारण कर चुके थे।

स्यमंतक मणि की कथा

(प्रेमसागर से)

चौ०—श्रीहरि को मणि चोरी लायो। पुनि सत्राजित मन पछतायो ॥

दीन्ह व्याहि सतभामहि जैसे। रुचिर चरित्र बखानहुँ तैसे ॥

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि महाराज ! सत्राजित ने पहले तो

श्रीकृष्णचन्द्र को मणि की चोरी लगायी पीछे भूठ समझ लज्जित हो उसने अपनी कन्या सत्यभामा हरि को ब्याह दी। यह सुन राजा परि-
क्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूछा कि कृपानिधान ! सत्राजित कौन था,
मणि उसने कहाँ पायी और कैसे हरि को चोरी लगायी, फिर क्योंकर
भूठ समझ कन्या ब्याह दी; यह तुम मुझे बुझाय के कहो। श्रीशुकदेव
जी बोले कि महाराज सुनिये; मैं सब समझा कर कहता हूँ। सत्राजित
एक यादव था, जिसने बहुत दिन तक सूर्य की अति कठिन तपस्या की
तब सूर्य देवता ने प्रसन्न हो विसे निकट बुलाय मणि देकर कहा कि
स्यमन्तक मणि इस मणि का नाम, इसमें है सुख संपत्ति का विश्राम,
सदा तू इसे मानियो और बल तेज में मेरे समान जानियो। जो इसे जप
तप संयम व्रत कर ध्यावेगा तो इससे मुँह माँगा फल पावेगा। जिस देश
नगर घर में यह जावेगा वहाँ दुःख दरिद्र काल भी न आवेगा, सर्वदा
सुकाल रहेगा और ऋद्धि विद्धि भी रहेंगी। महाराज ! ऐसे कह सूर्य
देवता ने सत्राजित को बिदा किया आगे प्रात ही उठ वह प्रातःस्नान
कर संध्या तर्पण से निश्चित हो नित्य चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप
नैवेद्य सहित मणि की पूजा किया करे और उस मणि से जो आठ भार
सोना निकले सो ले और प्रसन्न रहे। एक दिन पूजा करते करते सत्रा-
जितने मणि की शोभा और कांति देख निज मन में विचारा कि वह
मणि श्री कृष्णचन्द्र जी को ले जाकर दिवाइये तो भला। यों विचार
मणि कण्ठ में बाँध सत्राजित यदुवशियों की सभा में चला। मणि
का प्रकाश दूर से देखि यदुवशी खड़े हो श्रीकृष्ण जी से कहने
लगे कि महाराज ! तुम्हारे दर्शन की अभिलाषा किये सूर्य चला आता
है। तुमको ब्रह्मा रुद्र इंद्रादि सब देवता ध्यावते हैं और आठ पहर
ध्यान धर तुम्हारा यश गावते हैं, तुम हो, आदि पुरुष अविनाशी, तुम्हें
नित सेवती है कमला भई दासी।

चौ० —हौ तुम सब देवन के देव। कोउ नहि जानत तुम्हरो भेव ॥

तुम्हरे गुण अरु चरित अपार। क्यों प्रभु छिपौ आय संसार ॥

महाराज ! जब सत्राजित को आता देख सब यदुवंशी यों कहने लगे तब हरि बोले कि यह सूर्य नहीं, सत्राजित यादव है। इसने सूर्य की तपस्या कर मणि पायी है। इसका प्रकाश सूर्य के समान है, वही मणि बाँधे चला आता है। महाराज। इतनी बात जब तक श्रीकृष्ण जी कहें जब तक वह जाय सभा में बैठा। जहाँ यादव पंसासार खेल रहे थे। मणि की कान्ति देख सबका मन मोहित हुआ। श्री कृष्णचन्द्र भी देख रहे। तब सत्राजित कुछ मन ही मन समझ उस समय विदा हो अपने घर गया।

आगे वह मणि गले में बाँध नित आवे एक दिन सब यदुवंशियों ने हरि से कहा महाराज ! सत्राजित से मणि ले राजा उग्रसेन को दीजे और जगत में यश लीजे। यह मणि इसे नहीं फवती, यह राजा के योग्य है। इस बात के सुनते ही श्रीकृष्ण ने हँसते हँसते सत्राजित से कहा कि यह मणि राजा को दो और संसार में यश बढ़ाई लो। देने का नाम सुनते ही वह प्रणामकर चुपचाप वहाँ से उठ सोच विचार करता अपने भाई के पास जा बोला कि आज श्रीकृष्ण जी ने मुझसे मणि मांगी और मैंने न दी। इतनी बात जो सत्राजित के मुँह से निकली तो क्रोध कर उसके भाई प्रसेन ने वह मणि ले अपने गले में डाली और शस्त्र लगाये घोड़े पर चढ़ अहेर को निकला। महावन में जाय धनुष चढ़ाय, लगा साबर, चित्तल, पाढ़े और मृग मारने। इतने में एक हरिण जो आगे से झपटा तो इसने भी खिजलाय के उसके पीछे घोड़ा दपटा। और चला चला अकेला कहाँ पहुँचा कि जहाँ युगानुयुगों की एक अंधी गुफा थी। मृग और घोड़े के पाँव का आइट पाय उसमें से एक सिंह निकला, वह इन तीनों को मार मणि ले उस गुफा में बढ़ गया। मणि के जाते ही उस महा अँधेरी गुफा में ऐसा प्रकाश हुआ कि पाताल तक चांदनी हो गयी। वहाँ जामवन्त नाम रीछ जो श्री रामचन्द्र के रामावतार में था, सो त्रेतायुग से तहाँ कुटुम्ब समेत रहता था। वह गुफा में उजाला देख उठ धाया

और चला सिंह के पास आया, फिर वह सिंह को मार मणि ले अपनी स्त्री के निकट गया, विसने मणि ले अपनी पुत्री के पालने में बाँधी, वह उसे देख नित हँस हँस खेला करे और सारे स्थान में आठ पहर प्रकाश रहे। इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! मणि यों गयी और प्रसेन की यह गति भयी, तब प्रसेन के साथ जो लोग गये थे आयकर सत्राजित से कहा कि, महाराज !

चौ—हमको त्याग अकेले धायो। जहाँ गयो तहाँ खोज न पायो।

कहत न बने दूढ़ फिर आये। कहुँ प्रसेन न बन में पाये॥

इतनी बात के सुनते ही सत्राजित ने^१ खाना पीना छोड़ अति उदास हो चिंता कर मन ही मन कहने लगा कि यह बात श्रीकृष्ण की है, जो मेरे भाई को मणि के लिये मार मणि ले घर में आय बैठा है। पहिले मुझसे मांगता था, मैंने न दी अब उसने यों ली, ऐसी वह मन ही मन कहै रातदिन महा चिन्ता में रहै। एक दिन वह रात्रि समय स्त्री के पास सेज पर तन छीन मन मलीन मष्टमारे बैठा मन ही मन कुछ विचार करता था तब विसकी नारी ने कहा—

चौ०—कहा कन्त मन सोचत रहौ। मोसों भेद आपनो कहौ॥

सत्राजित बोला स्त्री से कठिन बात का भेद कहना उचित नहीं; क्योंकि उसके पेट में बात नहीं रहती, जो घर में सुनती, है सो बाहर प्रकाश कर देती है। यह अज्ञान, इसे किसी बात का ज्ञान नहीं, भला हो कै बुरा। इतनी बात के सुनते ही सत्राजित की स्त्री खिन्नताकर बोली कि मैंने कब कोई बात घर में सुन बाहर कही है जो तुम कहते हो ? सब नारी क्या समान होती हैं ? यों सुनाय फिर उसने कहा कि जबतक तुम अपने मन की बात मेरे आगे न कहोगे तबतक मैं अज्ञ

^१ यहाँ ने का प्रयोग चिन्त्य है।

पानी भी न खाऊंगी । यह बचन नारी से सुन सत्राजित बोला कि भूठ सच की तो भगवान् जाने, पर मेरे मन में एक बात आयी है सो मैं तेरे आगे कहता हूँ, परन्तु किसी के सोही, मत कहिये । विस की स्त्री बोली अब्बू मैं न कहूँगी । सत्राजित कहने लगा कि एक दिन श्रीकृष्ण जी ने मुझसे मणि मांगी और मैंने न दी । इससे मेरे जी मैं आता है कि विसी ने मेरे भाई को वन में जाय मारा और मणि ली । यह विस का काम है; दूसरे की सामर्थ्य नहीं जो ऐसा काम करे । इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! बात के सुनते ही विस को रातभर नींद न आयी और सातपाँचकर^२ रेनि गवांयी । भोर होते ही विस ने जा सखी सहेली और दासियों से कहा कि श्रीकृष्णजी ने प्रमेन को मारा और मणि ली । यह बात रात मैंने अपने कन्त के मुख से सुनी है, परन्तु तुम किसी के आगे मत कहियो । वे वहाँ से तो भला कह चुपचाप चली आयीं, पर अचरज कर एकांत बैठ आपस में चर्चा करने लगीं । निदान एक दासी ने यह बात श्रीकृष्णचन्द्र के रनिवास में जा सुनायी । सुनते ही सबके जी में आया कि जो सत्राजित की स्त्री ने यह बात कही है तो झूठी न होगी । ऐसे समझ उदास हो सब रनिवास श्रीकृष्ण को बुरा कहने लगीं । इस बीच किसी ने आय श्रीकृष्णचन्द्र जी से कहा कि महाराज ! प्रसेन को मारने और मणि के लेने का कलंक लग चुका, तुम क्या बैठे करते हो ? कुछ इसका उपाय करो ।

इतनी बात के सुनते श्रीकृष्णचन्द्र जी पहले तो घबराये, पोछे कुछ सोच समझ वहाँ आये, जहाँ उग्रसेन, वसुदेव और बलराम सभा में बैठे थे, बोले कि महाराज ! हमें सब लोग यह कलङ्क लगाते हैं कि कृष्ण ने प्रसेन को मार मणि ले ली । इससे आपकी आज्ञा ले प्रसेन और मणि के ढूँढ़ने को जाते हैं जिससे यह अपयश छूटे ।

^१ सोही, सम्मुख । ^२ ज्यों त्यों ।

यों कह श्रीकृष्ण जी वहाँ से आया कितने एक यदुवंशियों और प्रसेन के साथियों को साथ ले बन को चले । कितनी एक दूर जाय देखें तो घोड़े के चरणचिन्ह दृष्टि पड़े । इन्हीं को देखते वहाँ पहुँचे जहाँ सिंह ने तुरङ्ग समेत प्रसेन को मार खाया था । दोनों की लोथ और सिंह के पाँवों के चिन्ह देख सब ने कहा कि, उसे सिंह ने मार खाया । यह समझ मणि न पाय श्रीकृष्णचन्द्र सब को साथ लिये लिये वहाँ गये जहाँ वह औँडी^१ अन्धेरी महा भयावनी गुफा थी । उसके द्वार पर देखते क्या है कि सिंह मरा पड़ा है, पर मणि वहाँ भी नहीं । ऐसा अचरज देख सब श्रीकृष्णचन्द्र से कहने लगे कि महाराज ! इस बन में ऐसा बली जन्तु कहाँ से आया जो सिंह का मार मणि ले गुफा में बैठा, अब इसका कुछ उपाय नहीं । जहाँ तक ढूँढ़ने का धर्म था तहाँ तक आपने ढूँढ़ा । तुम्हारा कलङ्क छूटा, अब नाहर के सिर अपयश पड़ा । श्रीकृष्णचन्द्र बोले चलो इस गुफा में भ्रम के देखें कि नाहर को मार मणि कौन ले गया । सब बोले कि महाराज ! जिस गुफा का मुख देखे हमें डर लगता है उसमें धरेंगे कैसे ? वरन् हम तुमसे भी विनती कर कहते हैं कि इस महा भयावनी गुफा में आप भी मत जाइये, अब घर को पधारिये । हम सब मिल नगर में जाय कहेंगे कि प्रसेन का मार सिंह ने मणि ली और सिंह को मार कोई जन्तु एक अति डरावनी औँडी गुफा में गया । यह हम सब अपनी आँखों से देख आये । श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले मेरा मन मणि में लगा है, मैं अकेला गुफा में जाता हूँ, दस दिन पीछे आऊँगा । तुम दस दिन तक यहाँ रहियो । इसमें बिलम्ब हो तो घर जाय संदेशा कहियो । महाराज ! इतनी बात कह हरि उस अंधेरी भयावनी गुफा में पैठे और चले चले वहाँ पहुँचे, जहाँ जाम्बवन्त सोता था, उसकी स्त्री अपनी लड़की को खड़ी पालने में झुलाती थी । वह प्रभु को देख भय खाय पुकारी और

^१घिरी हुई और गम्भीर (औँडी—उन्मंडिता)

जाम्बवन्त जागा तो धाय हरि से लिपटा मल्लयुद्ध करने लगा । जब उसका कोई दांव और बल हरि पर न चला, तब मन ही मन विचार करने लगा कि मेरे बल के तो हैं लक्ष्मण राम और इस संसार में ऐसा बली कौन है जो मुझसे करे संग्राम । महाराज ! जाम्बवन्त मन ही मन ज्ञान से यों विचार फेर प्रभु का ध्यान कर—

चौ०—ठाढ़ौ भयो जोरि कै हाथ । बोल्यो द्रश देहु रघुनाथ ॥
 अन्तर्यामी मैं तुम जाने । लीला देखत ही पहिचाने ॥
 भली करी लीन्हें अवतार । करिहौ दूरि भूमि को भार ॥
 त्रेतायुग से इहि ठाँ रह्यौ । नारद भेद तुम्हारे क्यौ ॥
 मणि के काजै प्रभु इत ऐहैं । तब ही तोकों द्रशन दैहैं ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा कि हे राजा ! जिस समय जाम्बवन्त ने प्रभु को जान यों बखान किया, तिसी काल श्री मुरारी भक्तहितकारी ने जाम्बवन्त के मन की लग्न देख मग्न हो राम का भेष कर धनुषबाण धर दर्शन दिया, तब जाम्बवन्त ने साष्टांग प्रणाम कर खड़े हो हाथ जोड़ अति दीनता से कहा कि हे कृपासिन्धु, दीनबन्धु ! जो आपकी आज्ञा पाऊँ तो अपने मनोरथ कह सुनाऊँ । प्रभू बोले अच्छा कह ! तब जाम्बवन्त ने कहा कि हे पतित-पावन दीनानाथ ! मेरे चित्त में यों है कि यह कन्या जाम्बवन्ती आपको ब्याह दूँ और जगत् में यश बढ़ाई लूँ । भगवान ने कहा जो तेरी इच्छा में ऐसा आया तो हमें भी प्रमाण है । इतना बचन सुन प्रभु के मुख से निकलते ही जाम्बवन्त ने पहले तो श्रीकृष्ण की चन्दन अक्षत धूप दीप नैवेद्य ले पूजा की । पीछे वेद की विधि से अपनी बेटी ब्याह दी और उसके जौतुक में वह मणि भी धर दी ।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव मुनि बोले कि हे राजा ! श्रीकृष्ण-चन्द्र आनन्दकन्द तो मणि समेत जाम्बवन्ती को ले यों गुफा से चले और यादव गुफा के मुँह पर प्रसेन और श्रीकृष्ण के साथी खड़े थे अब

तिनकी कथा सुनिये । गुफा के बाहर उन्हें जब अठाइस दिन बीते, और हरि न आये, तब वे वहाँ से निराश हो अनेक अनेक प्रकार की चिन्ता करते और रोते पीटते द्वारका में आये । ये समाचार पाय सब यदुवंशी निपट घबराये और श्रीकृष्ण का नाम ले ले महाशोक कर रोने पीटने लगे और सारे रनिवास में कुहराम पड़ गया । निदान सब रानियाँ अति व्याकुल हो तन छीन मन-मलीन राजमन्दिर से निकल रोती पीटती वहाँ आयीं जहाँ नगर के बाहर एक कोस पर देवी का मन्दिर था । पूजा कर गौरी को मनाय हाथ जोड़ सिर नाय कहने लगीं—हे देवि ! तुझे सुर नर मुनि सब ध्यावते हैं और तुझसे जो वह माँगे हैं, सो पावते हैं, तू भूत, भविष्य, वर्तमान की सब बात जानती है, कह श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द कब आवेंगे ? महाराज ! सब रानियाँ तो देवी के द्वार पर धरना यों मनाय रही थीं और उग्रसेन, बसुदेव आदि सब यादव महा-चिन्ता में बैठे थे कि इस बीच श्रीकृष्ण अविनाशी, द्वारकावासी हँसते हँसते जाम्बवन्ती को लिये आय राज सभा में खड़े हुए । प्रभु का चन्द्र-मुख देख सबको आनन्द हुआ और यह शुभ समाचार पाय सब रानियाँ भी देवी पूज घर आयीं और मंगलाचार करने लगीं । इतनी कथा कह श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! श्रीकृष्णजी ने सभा में बैठते ही सत्रा-जित को बुला भेजा और वह मणि देकर कहा कि यह मणि हमने न ली थी तुमने झूठमूठ हमको कलङ्क दिया था ।

चौ०—यह मणि जाम्बवन्त ही लीनी । सुता समेत मोंहि तिन दीनी ॥
मणि लै तबहि चस्यौ सिरनाय । सत्राजित मन सोचत जाय ॥
हरि अपराध कियो मैं भारी । अनजाने दीनी कुल गारी ॥
यादवपतिहि कलङ्क लगायो । मणि के काजे वैर बढ़ायो ॥
अब यह दोष कटै सो कीजै । सतिभामा मणि कृष्णहि दीजै ॥

महाराज ! ऐसे मन ही मन सोच विचार करता मणि लिये मन-मारे सत्राजित अपने घर गया और उसने सब अपने जी का विचार

स्त्री से कह सुनाया। उसकी स्त्री बोली—स्वामी यह बात तुमने अच्छी विचारी; सत्यभामा श्रीकृष्ण को दीजै और जगत में यश लीजै। इतनी बात के सुनते ही सत्राजित ने एक ब्राह्मण को बुलाय शुभ लग्न महुर्त ठहराय रीरी अक्षत रुपया नारियल एक थाली में धर पुरोहित के साथ श्रीकृष्णचन्द्र के यहाँ टीका भेज दिया। श्रीकृष्ण जी बड़े धूमधाम से मौर बाँध ब्याहने आये तब सत्राजित ने सब रीतिभूति कर वेद की विधि से कन्यादान किया और बहुत सा धन दे जौतुक में उस मणि को भी धर दिया। मणि को देखते ही श्रीकृष्ण जी ने उसमें से निम्न बाहर किया और कहा कि यह मणि हमारे किसी काम की नहीं, क्योंकि तुमने सूय की तपस्या कर पायी है। हमारे कुल में श्रीभगवान् छोड़ और देवता की दी वस्तु नहीं लेते, यह तुम अपने घर में रखो। महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र जी के मुख से इतनी बात निकलते ही सत्राजित मरण ले लजाय रहा और श्रीकृष्ण जी सत्यभामा को ले बाजेगाजे में निन धाम पगारे और आनन्द से सत्यभामा समेत राजमन्दिर में जा शिराजे। इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूछा कि कृपानिधान! श्रीकृष्ण जी को कलंक क्यों लगा? सो कृपा कर कहो। शुकदेव जी बोले कि—

दोहा—चाँद चौथ को देखियां, मोहन भादौ भास ।

ताते लग्यो कलंक यह, अति मन भयो उदाप ॥

और सुनो—

दोहा—जो भादौ की चौथ को, चाँद निहार कोय ।

यह प्रसंग श्रवणनि सुने, ताहि कलंक न होय^१ ॥

^१प्रेमसागर के पुराने संस्करणों से पता चलता है कि लल्लू जी “विस” “जल” “तव” “विरिया” “जौतुक” “भयी” “होय आदिक प्रयोग करते थे। यह प्रान्तीयता थी।

४—सदलमिश्र

लल्लूजी के साथ सदलमिश्र जो भी फोर्ट विलियम कालिज कलकत्ते में नौकर थे। १८६० वि० में इन्होंने नासिकेतोपाख्यान लिखा। प्रेम सागर की तरह यह भी छात्रों के लिये पाठ्य ग्रंथ लिखा गया था। सदलमिश्रजी पूरब के रहने वाले थे। इनके गद्य में पूरबीपन है। “योगियों” “प्राणियों” इत्यादि शुद्ध खड़ीबोली के रूप लिखते हुए भी “साधुन” “तारन्ह” आदि लिखते थे। “कहनिहार” “ढेरावन” “वो” “कदही” “लाठिन” आदि का प्रयोग अब ग्राम्य समझा जायेगा। लल्लूजी में ब्रजभाषा पन होते हुए भी वाक्यसङ्गठन मनाहर है। सदलमिश्र में अनुप्रासों की वह बहार नहीं पर विस्तार में आगे बढ़ गये हैं। सकर्मक क्रियाओं के साथ अनावश्यक ‘को को’ से इनके वाक्य पंडिताऊ ढङ्ग के हो गये हैं, जैसे “सुख को पाते-दुख को सहते हैं”, “बात को सुनते हैं पीड़ा को सहते हैं,” आदि। “बतावते” “पावते” “किसू” आदि क प्रयोग उस समय ग्राम्य नहीं था। उर्दू के कवियों ने भी बहुतायत से इन शब्दों को अपनी कविता में आश्रय दिया है। सदलमिश्रज के न तो कोई और ग्रंथ देखने में आये हैं और न कोई जीवनवृत्त अबतब जानने में आया है।

नासिकेतोपाख्यान

उनकी इतनी बात सुनि बीच में बैठ, नासिकेत सुनि कहने लगे कि जितने तुम साधु सन्त हो सो अब समाधान हो सुनो। ऐसी आश्चर्य यह कथा है कि जिसके श्रवण से रोमांच होते हैं।

धर्मराज के लोक में भाँति भाँति के लोग और वृद्धों से भरी चाँ सौ कोस लम्बी चौड़ी चार द्वार की यमराज की पुरी है, कि जिसमें सदा

आप वो अनेक गण, गन्धर्व, ऋषि, वो योगियों के मध्य में धर्म का विचार किया करते हैं। तिस पुरी में जिस द्वार से जो प्राणी जाता है सो मैं तुमसे कहता हूँ।

देवता पितर गुरु के भक्त, क्रोध लोभ को जीतनहारे दानधर्म में सब दिन जिनकी उत्तम मत रहती है, वो जो जेठ बैशाख में जल दे प्राणियों के प्यास मिटाते, वो जाड़े में वस्त्र दे दुखी जन को पालते हैं, ऐसे जितने लोग हैं, सो तो यहाँ पूर्व द्वार से जाते हैं, वो नाना भोगविलास करते, और जो हरिहर दुर्गा का भक्त; अतिथि देवतों को पूजते, तीर्थ में नहाते, अहङ्कार को जीतते, गौ बचाने को युद्ध करते, ज्ञान के लिये साधुन का सङ्ग करते, ऐसे जो महात्मा लोग हैं सो सब उत्तर द्वार से जा परम पद को पहुँच मनभावने सुख को पाते हैं। और धर्म में जिनकी श्रद्धा है, सत्य ही बोलते, सबसे सत्य चलते, पराये की हिंसा निन्दा नहीं करते, विष्णु के भक्त, परद्रव्य को मिट्टी, परस्त्री को माता सामान जानते हैं, ऐसे जो कोई महापुरुष लोग हैं सो सब पश्चिम द्वार से वहाँ पहुँच विमानों पर चढ़ जहाँ इच्छा आवे तहाँ जा, अपनी रुचि से आनन्द बिहार किया करते हैं। और जो निर्दयी, पापी, कुटिल कठोर, क्रूर, बिशील, वेद, पुराण शास्त्र वो देव पितरों की निन्दा करते हैं, वे गुरु को नहीं मानते, झूठ ही बोलते रहते हैं, ऐसे जितने अधम लोग हैं, सो तो महाभयावन दक्षिण द्वार से जाते हैं, और दुःख भोगने के लिये धर्मराज की आज्ञा से तुरन्त काली काली बड़ी बड़ी देह पाय यमदूतों के हाथ पड़ मुँगरों के मार से भुरकुश होते, अति अन्धकार महामहा पौरव नरक में डाले जाते हैं, कि जिसमें जहाँ देखो तहाँ कीड़े कलबलाते हैं, और एक एक बाघसिंह, हुँडार, कुत्ते, बीछू, साँप गिद्ध, कौए से भरे हैं कि पापियों को देखते ही सैकड़न आ भुके पड़ते हैं वो झट झड़कर आपस में ऐँचा खँचा किया करते हैं। तिनमें दारुण दुःख-दायक बिच्छू डङ्ग मारने लगते हैं बार बार विषधर डसने को फुफकार करते हैं। लोहे समान चोचों से गिद्ध और कौए तिस पर ऐसे लगते हैं

सताने कि जिस दुख का कुछ पारावार नहीं है। हाय ! हाय मरे रे, दौड़ो रे, सदा पुकारते रहते हैं, पर बिना धर्म के कोई उनको बचाना चाहे तो नहीं बचा सकता।

इस प्रकार से यमपुरी का दक्षिण द्वार अति डरावना है कि जहाँ दूतों के बस होकर पापी लोग ऐसे महा नरक में पड़ते वो नाना भाँति के दुःख सहते हैं।

इसके अधिक कुम्भीपाक आदि सहस्रन नरक एक से एक मैंने देखे कि जिनमें बड़े बड़े कीट भरे वो हाहाकार शब्द दूर ही से सुनाता है। और वो महा दुखदाय असिपत्र एक ऐसा वन है कि जहाँ खड्ग की धार के समान चोखे गाछों के पत्ते हैं; नीचे तिसके अति दुर्गन्ध कीड़ों से आकुल पीप की नदी बहती है, वो अधमों के तलने के लिए बीच में कहीं कड़ाहों में तेल कड़कड़ाता रहता है। बहुतेरे तो पहाड़ पर से गिराये वो शूली पर चढ़ाये जाते हैं।

यह समाचार वैशम्पायन राजा जन्मेजय से कहते हैं—

इस प्रकार से नासिकेत मुनि यम की पुरी सहित नरक का वर्णन कर फिर जौन जौन कर्म किये से वह भोग होता है सो सब ऋषियों को सुनाने लगे, कि गौ, ब्राह्मण, माता, पिता, मित्र, बालक, स्त्री, स्वामी वृद्ध, गुरु इनका जो बध करते हैं वो झूठ साक्षी भरते, झूठ ही कर्म में दिन रात लगे रहते हैं, अपनी भार्या को त्याग दूसरे की स्त्री को व्याहते, औरों की पीड़ा देख प्रसन्न होते हैं और जो अपने धर्म से हीन पाप ही में गड़े रहते, वो माता पिता की हित बात को नहीं सुनते, सबसे बैर करते हैं, ऐसे जो पापीजन हैं सो सब महा डरावने दक्षिण द्वार से जा नरकों में पड़ते हैं।

इतनी कथा सुनाय फिर नासिकेत मुनि कहने लगे, कि यम की आज्ञा से सब दूत एक किसी को यहाँ से ले गये, वो उनके आगे खड़ा कर दिया, उसका जो पुण्य पाप का विचार होते मैंने देखा है सो अब कहता हूँ तुम सावधान हो सुनो।

यमराज की सभा में अपने अपने स्थान पर सुन्दर आसन बिछाये बैठे अग्नि, गौतम, मैत्रेय, बृहस्पति, शुक, वेदव्यास, ज, कण्व, भरद्वाज, दधीचि, गोभिल, दुर्वासा, मरीचि, भृगु, गालव, सनत्कुमार, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, याज्ञवल्क्य, विश्वामित्र, मार्तण्ड, हरिमित्र वो सुमित्र ये सब ऋषि लोग अच्छे अच्छे वस्त्र वो भूषण पहरे द्वादश आदित्य समान शोभते हैं। नाना शास्त्र विचार विचार प्राणियों के धर्म अधर्म का न्याय किया करते हैं। तिनके बीच में कानों में कुण्डल, सिर में सुन्दर मुकुट पहिरे तारन्ध में चन्द्रमा समान महा तेजस्वी धर्मराज सदा बिराजते रहते हैं।

तहाँ अति निर्दयी निपट डरावने वैसे ही हाथ में दण्ड लिए दूतों ने उससे पूछा कि जिसको यहाँ से ले जा यम के पास खड़ा कर दिया था, कि कैसा पाप तुमने किया है, सो धर्मराज के आगे सत्य बताओ।

इतने में बीच सभा में बैठे हुए प्रकट उचित कहनिहार^१ ऋषिलोग शास्त्र विचार के बोल उठे कि महाराज ! इस पापी ने तो ब्राह्मण बध किया है, कुम्भीपाक में जहाँ का दुख म्हा नहीं जाता, अपने कर्म का जैसा कुछ फल है सो बहुत दिन तक भोगेगा।

यह सुनते ही वो यम की आज्ञा पाय किङ्करो ने भट उससे पकड़ लिया वो लाठियों से मारते पीटते घसीटते वहाँ ले चले और बोही नरक में, जहाँ कोई क्षण भर भी पीड़ा से बचा नहीं सकता है, डाल दिया, वो तुरन्त सहस्रन कीड़े बड़े बड़े मोटे मोटे देह में लिपट गये, तो मांस काट काट खाने लगे।

नासिकेत ऋषियों से कहते हैं, इसी भाँति गोहत्या का भी निर्णय होते मैंने देखा है, और जो अपराधी विश्वासघात, गर्भपात करते, काम के बस हो जिस स्त्री के पास जाने को मना है उसीसे जो भोग करते हैं, मारे लालच के नहीं खाने को सो खाते हैं, ऐसे जितने अधम लोग हैं सो

^१ कहनेवाले।

तो कड़ाहों में कि जिनमें तेल गरम हो रहा है, डाले वो शूली पर चढ़ाये जाते हैं। इस प्रकार बहुतेरन्ह सीकरों^१ से बांध दूत सब यम के निकट पहुँचावते हैं, कि जहाँ तेज में सूर्य समान चित्रगुप्त प्राणियों के पुण्य पाप को लिख ले जा समझाते हैं। ऋषि लोग शास्त्र विचार विचार जैसा जिसको उचित है न्याय बतावते हैं। ऐसी धर्मराज की सभा और वहाँ का यह वृत्तान्त है और जिस जिस कर्म से इन नरकों में पड़ते हैं सो भी सुनो मैं कहता हूँ।

जो नर चोरी आदि नाना भाँति के कुकर्म में आप तो दिन रात लगे हैं, तिस पर भी औरों को दूखते हैं, वो एक अक्षर भी जिससे पड़ते, विसे गुरु के बराबर नहीं मानते हैं, सो तब तक महानरक को देखते हैं कि जब तक यह संसार बना रहता है। और जो दुष्ट गुरु को वाद कर हराते या डाटते हैं, पिता माता गुरु से व्यर्थ वैर करते हैं, वे सब विसी नरक में पड़ते हैं कि जहाँ ब्राह्मणों के बध करनेवाले जाते हैं। इसलिये माता पिता गुरु को कदहीं^२ कोप न करावेंगे कि जिससे ऐसे ऐसे संकट को भोगेंगे। और जो कांसा पीतल तामा लोहा चुराते हैं, कन्यादान समय में भांजी मारते, मुनि ब्रह्मचारी की तपस्यों में बाधा करते हैं, और जो निर्दयी क्या घर में क्या बन में, क्या कहीं आग लगा सहस्रन जीव को जला देते हैं सो असिपन्न बन में डाले व लाल लाल अंगारों पर घसीटे जाते हैं, व हाहाकार शब्द किया करते हैं।

और जो बालक, बृद्ध, स्त्री, साधु सन्त को छलते हैं, नहीं करने को सो करते, और जो मनुष्य अच्छी अच्छी मीठी वस्तु बना छिपकर अकेले ही आप चट करते हैं, सो विस कूप में पड़ते हैं कि जो विष्टा वो कीड़ों से भरा हुआ है।

^१सीकरों से, सिकड़ों से, जंजीरों से।

^२कद + ही = कधी; कब + हो = कभी। कदहीं वा कधी लिखना अब प्राग्य समझा जाता है।

जो नर बहुत दिन तक भोग वो प्राण से भी अधिक मान किस्म अपराध से पतिव्रता स्त्री को त्याग देते हैं सो सब भी असिपन्न-बन नाम नरक में डाले जाते हैं, वो नाना भाँति की पीड़ा को सहते हैं ।

इससे अधिक और भी नरक मैंने देखे कि जहाँ महा डेरावन आग लहर रही है अपने कर्मों से पापी लोग बार बार जलाये जाते हैं । बहुतेरे सीकरो से बाँधे हुए मुँगरों के नीचे गिर विलाप कर बेड़ी सहित उठ भागते हैं । तिस पर निर्दयी यम के दूत सब उसे तुरन्त पकड़ लोहे के घनों पर पटकते हैं; कितने एक तो गलों में फाँसी लगा किसी को दोनों पाँव ही धर घसीटते वो डाँटकर कहते हैं कि हा मूर्खों ! बहुत सबसे बैर बिसाहे हो, क्यों अब रोते हो ? अपना कमाया हुआ दुख भोगो और जो परसों^१ कुकर्म किया है विनको अष्टधातु की बड़ी प्रतिमा को कि जो अग्नि में लाल की हुई है अँकवार से पकड़ाते हैं, वो कहते हैं कि जैसे ही तुमने पराये की भार्या से विहार किया है वैसे ही इससे भी हर्षित होके करो; विनके कहने पर जो जो तो नहीं उठते तिनकी मार लाठिन से चूरकर नीचे गिराते हैं ।

ऐसे ही गञ्जन होते कोटिन स्त्रियों को भी देखा, कि जो दूसरे पुरुष से अपने धर्म को नाशती हैं, कितने तो पहार^२ वो तार^३ के वृत्तों पर से गिराये जाते हैं, जो पराये का जीव मारने से अपना जनम गँवाते हैं ;

जो नर किसी को खाने पीने में बाधा करते हैं सो सब भी विसी नरक में रहते हैं कि जिसका दारुण दुःख सहा नहीं जाता है । और जो नारी स्वामी निन्दती^४ वो नित्य कलह करती है सो वहाँ डाली जाती

^१ पर+सों = परायी स्त्री के साथ । ^२पहार । ^३तार ।

^४निन्दती— निन्दा करती । पहले के लेखकों में हिन्दी की क्रियाओं के प्रयोग की अच्छी प्रवृत्ति थी । अब संस्कृत वा अरबी की

है कि जहां बड़े बड़े सीमर^१ के अंगारे ऐसे लहर रहे हैं। पति के मरे पर औरों से मिलती हैं यम के दूत सब विस की जीभ को काट लेते वो अष्टधातु की प्रतिमा को पकड़ाते हैं।

और जो पतिव्रता स्त्री की निन्दा करते हैं सो सब नरकों में फिर नाना पीड़ा ऐसे भोगते हैं कि किसी प्रकार से किसी को उससे बचाव होने का नहीं।



संज्ञाओं में “होना” “करना” लगाकर क्रिया के स्थान में रखने की चाल अधिक चल पड़ी है जिससे भाषा निर्बल हो जाती है। इसे दूषण समझना चाहिये।

^१सेमल—शाहमल्ली। सेमल का फूल अंगारे की तरह लाल होता है। “जानि अहार चकोर ओर चहुते अनुकूले”—दीनदयाल।

५—राजा शिवप्रसाद

राजा शिवप्रसाद का जन्म १८८० वि० में मृत्यु १९५२ वि० में हुई। इन्होंने हिन्दी गद्य लिखना लगभग १९०१ वि० से आरम्भ किया। फोटो विलियम की खड़ी बोली लिखने वालों के बाद चालीस बरस तक किसी ने खड़ी बोली का गद्य लिखा ही न हो, वह असम्भव कल्पना होगी। परन्तु अब तक कोई ग्रंथ वा लेख नहीं मिला है। जो देखने में आते भी हैं वह भ्रजभाषा व अवधी के गद्य हैं।

बाबू शिवप्रसादजी लाहौर कलाह्व के समय के इतिहासप्रसिद्ध कलकत्ते के जगतसेठ के वंशज थे। इनकी शिक्षा भी अच्छी हुई और संस्कार भी अच्छा था। इनकी दादी रत्नकुँवर षटशास्त्र जाननेवाली पंडिता एवं हिन्दी की कवि थीं। बाबू शिवप्रसाद ने पहले रियासतों में ऊँचे ऊँचे पद पाये। फिर सिखयुद्ध में ब्रिटिश सरकार की सहायता की जिससे प्रसन्न हो सरकार ने इन्हें स्कूलों का इन्स्पेक्टर बनाया और राजा की उपाधि दी। उस समय किसी भारतीय को इन्स्पेक्टरी नहीं मिलती थी। कुछ दिनों पीछे सी० एस० आई० वा सितारे हिन्द की उपाधि मिली। बाबू हरिश्चन्द्र ने कुछ दिनों इनसे पढ़ा था।

राजा साहब के समय में कचहरियों में फारसी की जगह उर्दू ने स्थान कर लिया था और लिपि और भाषा से ऋग्वेदों की बुनियाद मजबूत हो गयी थी। राजा साहब जी-जान से इस उद्योग में थे कि लिपि नागरी हो और भाषा ऐसी मिली जुली रोजमर्रा के बोलचाल की हो कि किसी दल वालों को एतराज न हो। इसी उद्देश्य से इन्होंने मिश्रित हिन्दी लिखनी आरम्भ की। स्कूलों में पढ़ाने के लिए सैकड़ों पुस्तकें बनायीं और बनवायीं इनके गद्य में उर्दू और फारसी के ढंग के अनुप्रास बड़ी मनोहरता से आते हैं, परन्तु फारसी अरबी के शब्दों की इतनी बहुतायत है, कि इनके हिन्दी

लेखों को बे फ़िक्क कह सकते हैं। मिश्रित हिन्दी लिखने की नींव में इन्होंने फ़ारसी अरबी तुरकी के खडंजे और फ़ावां इतनी मजबूती से जड़ दिये हैं कि अब उन्हें निकालकर एकदम अलग कर देना असंभव हो गया है। इनके विरोधी दल के लोगों ने संस्कृत शब्दों को भी उसी तरह भरा, परन्तु अन्तिम फल वही मिश्रण हुआ। दोनों दल का झुकाव तत्समों की ओर अधिक और तद्भवों की ओर कम था। हमने राजा साहब के उसी लेख को चुना है जिनमें उन्होंने इन बातों पर बहस की है। इतिहास तिमिरनाशक और भूगोल-हस्तामलक इनके नमूने के ग्रन्थ हैं।

भाषा का इतिहास

इस मुल्क के सब से पहले रहनेवाले कौन थे और उनकी बोली क्या थी अब कोई नहीं कह सकता। क्या वह बोली तामिल और तिलगू की जड़ थी कि जो अब तक दक्खिन में बोली जाती है, और संस्कृत से कुछ भी सरोकार नहीं रखती या उन बहुत सी बोलियों में से किसी की जड़ थी जो भूमि भील गोड़ चुड़ाव आदि विन्ध्या के आसपास जंगल भाड़ियों के रहनेवाले बोलते हैं।

जो हो संस्कृत दृगिज्ञ नहीं थी। संस्कृत इस मुल्क में आर्य लोगों के साथ यानी ब्राह्मण क्षत्री और वैश्यों के साथ कि जिनकी वह बोली थी उत्तर पच्छिम यानी हिमालय पार उत्तर कुरुक्षेत्र से आयी। साबित है कि यहां के भूमि इस मुल्क के हर हिस्से में जुदा जुदा किस्म की बोलते थे। इससे यह मतलब नहीं कि इस कदर क़दम-बक़दम^१ हटते हुए दक्खिन को चले गये खाह अगम्य जंगल पहाड़ों में पनाहगीर^२ हुए इसमें शक नहीं कि उनकी जमाअत^३ ने शूद्र के नाम से अपने विजयी गोरे दुश्मनों की यानी आर्य लोगों की सेवा कबूल की, और उनकी नयी आबादियों में आबाद होकर गिन्ती में आये। गो निहायत खार

^१पगपग। ^२शरण लेनेवाले। ^३जाति।

और जलील^१ और ख़ितमतगुज़ार थे तो भी वह निहायत काम के थे । परदेसियों को अकसर औरतों की तलास रहती है इस बाइस^२ ऊँचे वर्ण-वालों को शूद्रों की औरतें लेने में यकीन है कि ज़ियादा परहेज़ न रहा हो, पस^३ इस हालत में ज़रूर यह डर ब्राह्मणों के जी में आया होगा कि जो इन भूमियों के साथ इस तरह का मेलजोल होने से उनकी ज़बान यानी^४ वेद की भाषा के लिये पैदा हुआ था और वह बड़े शुक्-गुज़ार^५ हुए होंगे पाणिनि ने जब उसने अपना अद्वितीय और अद्भुत व्याकरण अर्थात् अष्टाध्यायी बनाकर उनकी भाषा को पक्का और अडिग कर दिया । पाणिनि ने जब उस भाषा का व्याकरण बनाया, ज़रूर उसको किसी क्रूर उन मिलावटों से पाक और साफ़ भी करना पड़ा होगा कि जो उस वक्त तक उसमें भर गयी थीं, और इसलिए उसका नाम संस्कृत पड़ा; क्योंकि सन् और कृत के यही अर्थ लिखे हैं । ब्राह्मणों का पेशा पढ़ने पढ़ाने का था, और इनकी बड़ाई और जीविका इसी संस्कृत विद्या से थी, इसलिये उन्होंने यकबारगी^६ दूसरों के लिए उसका दर्वाज़ा बन्द कर दिया और उन्हें उसके पढ़ने पढ़ाने की बिल्कुल मनाही कर दी, और सब उस मनाही का यह ठहराना कि पाणिनि का व्याकरण वेदाङ्ग है; और शूद्रों को सिखलाने की तो कौन सी बात है, और नाम उसका देवबाणी रक्खा । देव संस्कृत में ईश्वर, राजा और ब्राह्मण को कहते हैं । सिवाय इसके शूद्रों को संस्कृत शब्दों का शुद्ध उच्चारण करना भी बहुत कठिन पड़ा होगा और प्राकृत के नाम से वह उनकी नयी नयी ज़बानें बन गयी होंगी । प्राकृत निकला है प्रकृत से । जब एक ज़बान से कोई दूसरी ज़बान निकलती है, असली ज़बान को उस दूसरी ज़बान की प्रकृति की कहते हैं । हेमचन्द्र मशहूर कोशवाला लिखता है कि प्राकृत असल संस्कृत है, क्योंकि

^१नीच और अपमानित । ^२लिए, कारण । ^३बस, अतः ^४अर्थात् ।

^५कृतज्ञ । ^६एकदम ।

जो कुछ संस्कृत से निकले उसीका नाम प्राकृत रखा जा सकता है।

गरुड़^१ प्राकृत वह ज़बानें ठहरीं जो संस्कृत शब्दों से बनी थीं, मगर जिस तरह पर उनको अवाम^२ काम में लाते थे और जिनमें भूमियों के शब्द भी मिले होते थे। व्याकरण उसका किसी क्रूर संस्कृत से निकालकर हर एक ज़िले की हालत के मुवाफिक^३ कुछ कुछ बदल बदल कर अपने तौर पर बना लिया था। हम यहाँ मिसाल^४ के लिये कुछ ऐसे शब्द बतलाते हैं जो भूमियों की भाषा से प्राकृत में आ गये और संस्कृत से कुछ इलाका^५ नहीं रखते।

पुरानी प्राकृत	संस्कृत	नयी प्राकृत यानी हिन्दी
गोडम्	पादम्	गोड़
पोट	उदरम्	पेट
छिणालिया	पुंश्चली	छिनाल
खूटा	स्तम्भः	खूँटा
डुब्बन्तम्	मज्जन्तम्	डूबना
घोट	पिब	घूटना

और नीचे वह शब्द लिखे जाते हैं जो संस्कृत से प्राकृत में आगये।

संस्कृत	पुरानी प्राकृत	नयी प्राकृत यानी हिन्दी	संस्कृत	पुरानी प्राकृत	नयी प्राकृत यानी हिन्दी
शृणु	सुणु	सुन	सर्वम्	सव्वम्	सब
दधि	दधि	दही	श्रेष्ठिः	सेट्टि	सेठ
मुखम्	मुहम्	मुंह	संध्या	संभा	संभा
बधूः	बहू	बहू	सूची	सुई	सूई
चर्मकारः	चम्मारओ	चमार	षष्ठी	छठी	छठ
कुम्भकार	कुम्भारो	कुम्हार	वाष्पः	बाप्फो	बाफ

^१निदान। ^२सर्वसाधारण। ^३अनुसार। ^४उदाहरण। ^५सम्बन्ध।

जो हो, यह तमाम प्राकृतें अर्थात् यहाँ के जिला की बोलियाँ अर्थात् मागधी, अर्द्धमागधी शौरसेनी महाराष्ट्री शावरी आभीरी चांडाली पैशाची आदि उच्च लोगों के नज़दीक गँवारी और बहुत नीच रहीं, और राजदरबार अर्थात् कचहरियों की जबान संस्कृत बनी रही। यहाँ तक कि मसीह के जन्म से ५४३ बरस पहले शक्यमुनि गौतमबुद्ध ने एक ऐसा भारी उलट पुलट पैदा किया जो आजतक दुनिया में सुना नहीं गया। उसने अपना बयान^१ अवाम को समझाना चाहा और उसने उनकी बोली में उपदेश करना शुरू किया। प्राकृत औरत बच्चे पढ़े अनपढ़े सब समझते थे। इस मगध देश की प्राकृत अर्थात् मागधी जो बौद्धमत का मानों पालना थी, एक बारगी ऊँचे दर्जे को पहुँच गयी और वही जबान मज़हबी और दर्बारी करार पाया ! और कई सौ कम दो हजार बरस गुजरते हैं वररुचि ने उसका व्याकरण भी बना दिया। यहाँ तक कि बौद्ध मतवालों ने बाप को बेटा और बेटे को बाप कर दिया। प्राकृत को असल और संस्कृत को उससे निकला बता दिया। लिख दिया “एक जबान है जो तमाम ज़बानों की असल है, और सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य और ब्राह्मण जिन्होंने कभी कुछ कहा सुना न था बल्कि सर्वशक्तिमान बुद्ध लोग भी उसी में बोलते थे और उसका नाम मागधी है”*।

जब श्रीशङ्कराचार्य ने आठवीं या नवीं सदी के करीब बौद्धों को यहाँ से निकाला तब संस्कृत को फिर जारी करने की कोशिश हुई लेकिन शङ्कर स्वामी के भी मकदूर^२ से बाहर था कि प्राकृत को नाश करें और संस्कृत को नित के तमाम काम और आपस की बोल चाल

^१कथन।

*सा मागधी मूलभासा नराया यादि कप्पिका।

ब्राह्मण चास्सुताज्जापा सम्बुद्धा चापि भासरे ॥

^२शक्ति।

के लिए जारी ज़बान बनावें। गो इसमें शक नहीं कि चन्द रोज के लिये संस्कृत धार के राजाभोज और कन्नौज के राजा राठौर के दरबारों में बड़ी आबताब के साथ चमक गयी थी लेकिन प्राकृत को (और यहाँ गरज उस प्राकृत से है जो मगध से लेकर मथुरा के आगे तक मागधी और शौरसेनी के नाम से बोली जाती थी) कुछ दिन बाद ऐसे कड़े और जबर्दस्त दुश्मनों से काम पड़ा कि अब तक कभी नहीं आये थे। यह मुसलमान थे। यह फ़ारसी बोलते थे और इन्हीं के साथ फ़ारसी इस देश में आयी।

इन लोगों ने अपनी फ़ारसी के सामने प्राकृत का नाम हिन्दी^१ रक्खा। इस जमाने तक प्राकृत में धीरे धीरे बड़े बड़े उलट फेर हो गये थे संक्षेप और उच्चारण की सुगमता के लिये बहुतेरे शब्द बिल्कुल बदल गये थे नये नये शब्द शामिल हो गये थे। पुराने मुश्किल से पहिचाने जाते थे। तमाम दुनिया की जवानों का यही दस्तूर है। सर चार्ल्स लाइल कहता है कि “दुनियां में कोई ज़बान भी हज़ार बरस से ज़ियादा कायम नहीं रहती है। जो जवाने कि अब बोली जाती है हज़ार बरस पेशतर इन में से किसी का वजूद न था। यानी ठीक इसी तरह पर कोई भी बोली नहीं जाती थी। और इस ढब बहुत सी कदीम^२ ज़बानें बन बनकर अब इन हाल की ज़बानों की शकलें पैदा हुई हैं”। अब इस ज़माने की प्राकृत वह प्राकृत न थी जिसमें बुद्ध ने उपदेश किया था। प्रयाग और दिल्ली की बोलियों में वहाँ की उन बोलियों की बनिस्वत जो दो हज़ार बरस पहले वहाँ बोली जाती थीं, और जिनमें महाराज धर्म अशोक का हुक्मनामा पत्थर के खम्भों पर खुदा हुआ है, बहुत फ़र्क है। इस फ़र्क के दिखलाने के लिये हमने ऊपर की फिहरिस्तों में^३ एक खाने के दमियान^४ नयी प्राकृत

^१ ‘हिन्दवी’ नाम रखा जो बाद को ‘हिन्दी’ कही जाने लगी। (सं०)

^२ प्राचीन। ^३ सूक्तियों में। ^४ बीच।

यानी हिन्दी के नाम से उन शब्दों को भी लिख दिया है जो अब बोले जाते हैं। उनके देखने से मालूम हो जायगा कि उनकी सूरत पहले प्राकृत में क्या थी और अब इस हिन्दी में क्या हो गयी। मुसलमानों की सल्तनत में यह फ़ारसी शब्दों से बिल्कुल भर गयी। फ़ारसी की कदीम ज़बान यानी ज़न्दावस्ता की ज़बान संस्कृत से बहुत मिलती है, बल्कि दोनों एक ही पेड़ की दो टहनियाँ हैं। मिसाल के तौर पर कुछ शब्द जो हम यहाँ लिखते हैं उनके उच्चारण और अर्थ से हमारा यह दावा तुरंत साबित हो जावेगा—

कदीम फ़ारसी	संस्कृत	कदीम फ़ारसी	संस्कृत	कदीम फ़ारसी	संस्कृत
पितर	पितृ	ब्रातर	भ्रातृ	पैति	पति
अस्प	अश्व	वाच	वाच	जेनु	जानु
मधु	मधु	वश्र	वस्त्र	वैरि	वारि
मैध्य	मेध्य	मिरेथ्यु	मृत्यु	पाध	पाद

लेकिन यह नयी फ़ारसी जिसने हमारी प्राकृत भर दिया, खुद अरबी से भरी हुई आयी। अरबी संस्कृत से कुछ सरोकार नहीं रखती। प्राकृत ने फ़ारसी के साथ अरबी को भी अपने अन्दर जगह दी, और मुसलमानों का आईन कानून जो उस वक्त हिन्दुस्तान में जारी था, अरबी ज़बान में होने के कारण अरबी शब्द तमाम हिन्दुस्तान में, क्या बड़े आदमी और क्या अवाम, सबकी नित की बोलचाल में आ गये।

अब इस नयी ज़बान को अर्थात् उस प्राकृत को जिसमें फ़ारसी और अरबी मिली, हिन्दी कहो चाहे हिन्दुस्तानी भाखा कहो, चाहे ब्रज भाखा रेखता कहो, चाहे ख़री बोली उर्दू कहो चाहें उर्दूइमुअल्ला^१ उसके

^१महाउर्दू ।

बीज तभी से बोये गये कि जब महमूद गजनवी ने चढ़ाई की और मुसलमानों की इस मुल्क पर तबज्जुह^१ हुई आठ सौ बरस से जियादा गुजरते हैं ।

दिल्ली और आगरा यह दोनों उस वक्त गुमनाम थे । कन्नौज गोया हिन्दुओं के सल्तनत^२ की राजधानी गिना जाता था । संस्कृत विद्या वहाँ अपने औज^३ पर थी । यह कन्नौज ही था जहाँ से बंगले के राजा आदि—सूर ने कुलीन ब्राह्मण मँगाये । बनारस कन्नौज के ताबे था । मथुरा का शहर भी बड़ी रौनक पर था । महमूद गजनवी इन दोनों शहरों की बड़ी बड़ाई लिखता है । लेकिन निहायत अफ़सोस की बात है कि उस वक्त की भाषा में लिखी हुई कोई पुस्तक अब नहीं मिली । सब से पुरानी इस ज़बान की पुस्तक जो हम लोगों को हाथ लगी है मशहूर भाट चन्द का “पृथ्वीराज रासो” है । कहते हैं कि चन्द कगाँड़े का रहने वाला था । पृथ्वीराज सोमेश्वर चौहान अजमेरवालों का बेटा था । अपने नाना अनंगपाल दिल्ली के राजा की गोद बैठा था । शाहबुद्दीन गोरी ने सन् ११९३ ई० में उसके गले पर छुरा फिरवाया, और तभी से हिन्दुस्तान में मुसलमानों की सल्तनत कायम हुई । पृथ्वीराज के तहत में^४ दिल्ली और अजमेर का राज एक हो जाने के कारण किसी कदर दिल्ली फिर नामवर हो गयी थी । लेकिन ज़ियादा दिल्ली की नामवरी का सबब यह है कि वह तब से बराबर मुसलमानों की राजधानी रही । यह कहना मुश्किल है कि चन्द की ज़बान में याने जिस ज़बान में उसने “पृथ्वीराज रासो” लिखा है कन्नौज की ज़बान थी या मथुरा का गङ्गे की, या दिल्ली और अजमेर की, या उस ज़माने में इन मुकामों की बोलियों के दर्मियान कुछ ऐसा बड़ा फ़र्क न था । जो हो, कई सतरे लिखी जाती हैं । उनके देखने से मालूम हो जायगा कि हमारे पश्चिमोत्तर^५

^१ध्यान । ^२राज्य । ^३ऊँचाई । ^४अधीनता में । ^५संयुक्त प्रान्त पहले पश्चिमोत्तर देश कहलाता था ।

देश की ज़बान तब से अब किस क़दर बदल गयी, और कैसा जल्द फ़ारसी शब्द उसमें मिलने लगे थे ।

मिले सेन सुरितान^१ दिशा अन्नके दिव्य भर ।

दिव्यपाणि पद्धरो सुकरि सावस्य (?)^२ पर ॥

गहि को दुसजि यजिन सुबर आतस चरित अनन्त करि ।

आवन्त पग सारध सयन मिलि मन थाप्यिय थान लरि ॥

तब कहै शाह साहब अहो तातारखान सुनि ।

खुरासान रुस्तमा जमन मारूफ खान पुनि ॥

अब इस मुल्क में दो किस्म के आदमी हो गये । एक जिन्होंने इस मुल्क को फ़तह किया अर्थात् मुसलमान और दूसरे जो उनके ताबे हुए अर्थात् हिन्दू । दर्बार की ज़बान फ़ारसी थी, और दरबार ही की ज़बान तमाम दुनिया में और तमाम ज़बानों में उत्तम और माननीय समझी जाती है । गोया बिलकुल सभ्यता और वज़ादारी की^३ वह जड़ हो जाती है । हिन्दू का सब से बड़ा दौसला यही था कि जहाँ तक बन पड़े इल्म और लियाक़त में मुसलमानों से बराबरी करें । बड़ी से बड़ी तारीफ़ उस वक्त हिन्दू की यही हो सकती थी कि उनके शेर ईरानियों के से मालूम होते हैं । हिन्दू लोग न केवल आपस के बीच फ़ारसी में चिट्ठीपत्री जारी रखते थे, वरन् अपने घर का हिसाब भी फ़ारसी में लिखते थे । उस वक्त के हिन्दू मुसलमानों का^४ हाल जो सर हेनरी ईलियट साहिब ने अपनी किताब में दर्ज फ़र्माया है लायक़ देखने के है । साहब मौसूफ़^५

^१फ़ारसी शब्द इटैलिक में हैं ।

^२यहाँ कोई शब्द छूट गया है जिससे अर्थ भी अस्पष्ट है । वह छः पंक्तियाँ भिन्न भिन्न स्थलों से राजा साहब ने चुनी हैं । पाठ में इतना ग़ड़बड़ है कि न अर्थ का पता लगता है, न प्रसङ्ग का । (सं०)

^३शिष्टता की । ^४ग्रन्थकारों का । ^५उक्त, प्रशंसित ।

लिखते हैं कि हिन्दू मुसन्नफ़ की तसनीफ़ में^१ कोई बात ऐसी नहीं है जिससे उसकी क्रौम और उसका मज़हब ज़ाहिर हो सके। हां शायद किसी क़दर इबारत का^२ ग़ैर-फ़सीह^३ और पुरतकल्लुक^४ होना अलबत्ता इस बात पर उँगली उठाता है कि ग़ैर की पोशाक उसके बदन पर कैसी बुरी मालूम होती है। वह हिन्दुओं को काफ़िर^५ लिखता है और मुसलमानों को मोमिन^६। वह पीरो^७ की ऐसी ताज़ीम^८ करता है गोया उनका चेला ही बन गया है जब कभी हिन्दू मारे जाते हैं वह लिखता है जहन्नुम^९ में दाखिल हुए, और जब किसी मुसलमान का ऐसा हाल होता है तो लिखता है शहादत का शर्वत पीया^{१०}। उसके अपने हाकिमों के मामूली मुहावरों^{११} का यहाँ तक अभ्यास हो गया है कि वह लिखता है नूरेइस्लाम^{१२} मुहर्रमुल्हराम^{१३} कुरानशरीफ़^{१४} और बिसमल्लाह^{१५} वग़ैर कुछ शुरू ही नहीं करता। हम्द, नात^{१६} (स्तुत) भी खुदा पैग़म्बर^{१७} की वह अपने दीवाचे (भूमिका) में बहुत ज़रूरी समझता है। एक बूढ़ा हिन्दू मुसन्नफ़ जो बख़ूबी जानता होगा कि जल्द ही चिता में फुंककर और राख की ढेरी होकर गंगा में बहाया जायगा, अपने तर्ज़ “बर सरे ताबूत”^{१८} व “बर कनारै गोर”^{१९} लिखता है। इसमें शक नहीं कि इनमें से बहुत सी बातें वह

^१लेख में, रचना में। ^२वाक्यावली का। ^३वाक्यपटुता के विरुद्ध। ^४अस्वाभाविक रीति से अलंकृत। ^५भ्लेच्छ। ^६धर्मनिष्ठ। ^७महन्तों की। ^८सम्मान। ^९नरक में। ^{१०}स्वर्गवासी हुए। ^{११}शब्द विन्यास का। ^{१२}(मुसलमानों) धर्म की ज्योति। ^{१३}हराम मुहर्रम (मास)। ^{१४}सम्मानित कुरान। ^{१५}प्रेम रूप भगवान के नाम से। ^{१६}हम्द ईश्वर प्रार्थना नात नबी की स्तुति। ^{१७}पैग़म्बर नबी धर्म, नायक, ऋषि, ईश्वरीय सन्देश लाने वाला। ^{१८}ताबूत—मुसलमानों अर्थात् तिकड़ी पर। ^{१९}बर सरे ताबूत—तिकड़ी पर। ^{२०}गोरकबर—कबर के किनारे, कबर में पाँव लटकाने हुए।

ग्रन्थकर्त्ता खुशामद की राह से जानबूझ कर अपने मुसलमान मालिकों के खुश करने को लिखते होंगे, तौ भी हमको इस बात के लिखने के लिये कि प्राकृतों की नहरों में किस तरह फ़ारसी शब्दों की सैलाबी^१ आ गयी बहुत काम की है ।

कबीर पन्द्रहवीं सदी के अन्त में सिकन्दर लोदी के ज़माने में हुआ । बनारस में एक मुसलमान जुलाहे के घर में पैदा हुआ था; और पढ़ा लिखा न था । रामानन्द का चेला हुआ और कबीर पंथियों का मत चलाया । उसकी तसनीफों से अब भी बहुत कुछ बच रहा है । यह उसी का है—

छोड़ बद्बख्त^२ तू क्रहर^३ की नज़र फूँ,
खोज़ दिल बीच जहाँ बसत हक्का^४ ।
अजब दीदार^५ है अजब महबूब^६ है,
करन कारन जहाँ सबद सच्चा ॥
खदे दरदबन्द^७ दरवेश^८ दर्गाह^९ में,
खैर^{१०} और मिहर^{११} मौजूद मक्का ।
ज़िकर कर रब्बका^{१२} फ़िकर दरदफै कर^{१३},
कहे कबीर इह सखुन^{१४} पक्का ॥

बाबा तुलसीदास ब्राह्मण थे पंडित थे गोसाईं थे, अकबर बादशाह के वक्त में ये बाँदा के जिले में जमुना के किनारे राजापुर में पैदा हुए थे, और अठारहवीं सदी के शुरू में गंगा के किनारे बनारस में परलोक

^१सैलआबी, सैलाबी; जलप्लावन, बाढ़ । ^२अभागे । ^३क्रोध ।
^४सत्य-भगवान, सत्यनारायण । ^५अद्भुत दर्शन । ^६अद्भुत प्रियतम ।
^७आत्त । ^८दर दर भीख माँगने वाला, भिखमंगा । ^९दर्गाह = फकीरों का वा ईश्वर का दरबार । ^{१०}भलाई । ^{११}कृपा । ^{१२}ईश्वर का । ^{१३}दूर कर । ^{१४}बात ।

को सिधारे । उनकी रामायन है । अपने किस्म की अद्वितीय है । इससे बढ़कर हिन्दुओं में इस समय कोई दूसरी पुस्तक जारी नहीं है । गो ज़वान किसी क्रूर गँवारी है और संस्कृत शब्दों से भरी है, लेकिन कविताई में अपने किस्म की एक है । घोड़े की तारीफ़ में लिखते हैं—

जगमति जीन जड़ाऊ जोति सुमोति मानिक तेहि खगे ।

किकिन ललाम लगाम ललित विलोकि सुर नर मुनि ठगे ॥

उसी ज़माने के करीब करीब सूरदास हुए उन्होंने कृष्ण के जस गाये । इनके पद मशहूर हैं । यह उनका कहा है—

कीजै प्रभु अपने विरद की लाज ।

हौँ पलित कबहूँ नहीं आयों नैक तुम्हारे काज ॥

माया सबल धाम धन बनिता बाधयो हौँ एहि साज ।

देखत सुनत सबै जानत हौँ तऊ न आयो बाज^१ ॥

कहियत बहुत काह जब ताने जवन न सुनी अवाज ।

दियो न जात पार उतराई चाहत चढ़न जहाज ॥

लीजै पार उतार सूरकों महाराज ब्रजराज ।

नयी न करत कहत प्रभु तुमसों सदा गरीबनिवाज ।

अगर हम चाहें, बहुतेरे मिसाल, नानक, दादू, नाभा आदिकी जो करीब करीब उसी ज़माने में हुए हैं दे सकते हैं, लेकिन उसमें ऐसा नामी कोई नहीं है, और हमारे नज़दीक अब इसकी काफ़ी दलीलें पेश हो गयीं कि गो हिन्दुओं ने देववागरी हल्क और अपना खास उच्चारण और बहुत सा अपना व्याकरण बहाल^२ और बकरार रक्खा, तो भी फ़ारसी शब्दों को बहुत आज़ादी^३ से काम में लाये ।

मुसलमान घमण्ड के मारे अपनी अधीन रअय्यत की^४ ज़बान में बातचीत करना बेशक शर्मिन्दगी^५ और बेइज्जती का^६ कारण समझते

^१बाज न आयो—नहीं फिरा; नहीं छोड़ा । ^२स्थिर, कायम ।

^३बे फ़िक्र । ^४प्रजा । ^५लज्जा । ^६अपमान का ।

होगे, लेकिन उनके महल हिन्दुओं की लड़कियों से भरे थे । और उन्हें रातदिन काम ऐसे हिन्दुओं से पड़ा करता था जो फ़ारसी के कम वाकिफ़^१ थे । बस यह घमण्ड धीरे धीरे कम हो गया । और अगर बिलकुल ख़त किताबत^२ नहीं तो बोलचाल तो हिन्दुओं के साथ उनकी ज़बान में जारी हो गयी । और भी उनकी ज़बान में एक अनोखापन दिलाने के लिए बनाने लगे । ख़ाजा अबुल हसन खुसरो जिसको अमीर खुसरो भी कहते हैं और जो गयासुद्दीन बलबन के दरबार में नामी मल-कुशोरा अर्थात् कविराज था, तेरहवीं सदी में इस किस्म की गजलों-कहने लगा था—

जे हाले मिस्कीं मकुन तग़ाफ़ुल^३ दुराय नैना बनाय बतियां ।

गज़ल मशहूर है, सब यहाँ लिखने की जरूरत नहीं, लेकिन सभी खुसरो की तरह “तूतीये हिन्द”^४ न थे । हिन्दी में हँसी में लायक ग़लतियां करते थे उनकी हिन्दी ज़बान से तो हम नये आये विलायत के ताजे डाल के टूटे साहब लोगों की हिन्दी बेहतर समझते हैं । मिसाल के लिए कुछ दक्खनी सादी का कलाम सुनिये । अकसर इसे लोग ग़लती से शिराज़ी सादी समझते हैं । मगर यह चौदहवीं सदी में हुआ था—

हमना तुम्हन को दिल दिया, तुम दिल लिया और दुख दिया ।

हम यह किया तुम वह किया, ऐसी भली यह रीति है ।

मालिक मुहम्मद जाइसबाले की मनसबी^५ पदमावत ऐसे ऐबों से ख़ाली है, और शीरीनी^६ उसके कलाम^८ से टपकी पड़ती है । वह

^१जानकार, अभिज्ञ । ^२लिखा पढ़ी । ^३दीन की दशा उपेक्षा न करो ^४हिन्दी की तूती । ^५शेख शादी फारसी के प्रसिद्ध कवि सं० ११०२ वि० के लगभग ईरान के शीराज़ प्रांत में हुए थे । भारती दक्षिण का सादी इनके २०० वर्ष पीछे हुआ । ^६द्विपदी पद्यों की आख्यायिका । ^७माधुर्य, मिठास । ^८उक्ति से ।

सोलहवीं सदी में शेरशाह के वक्त में था । मसनवी का दीवाचा—

शायद अशरफ़ पीर पियारा । जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा ॥
लेसा हिये प्रेमकर दिया । उठी जोति भा निर्मल हिया ॥
मारग हुतो अन्धेर असूझा । भा उजेर सब जाता बूझा ॥
खार समुद्र पाप मोर मेला । बोहित धर्म कीन्ह कै चेला ॥
जाके ऐस होहि कनहारा^१ । तुरत बेग सो पावे पारा ॥
दस्तगीर^२ गाढ़े के साथी । जहँ अवयाह देहि तहँ हाथी ॥

यह अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ का ज़माना था कि जब किसी क्रूर मुल्क में अमन-आमान^३ रहने लगा, और लिखने पढ़ने की तरफ़ लोगों का दिल मुतवजिह हुआ^४ तो तर्जमा^५ के लिये संस्कृत पुस्तकें तलाश होने लगीं और हिन्दुओं के साथ राह-रस्म बढ़ जाने से मुसलमान शाहर^६ भी कि जिनमें क्या कोई शाही खानदान से न होंगे, बिलकुल यहाँ की ज़बान में शैर^७ कहने लगे । 'बली' इस किस्म का शाहर अव्वल^८ कहा जा सकता है । उसको तीन सौ बरस से ज़ियादा गुज़रा । यह उसी का है—

ताक़त नहीं किसी की कि एक हर्फ़ सुन सके ।
अहवाल गर^९ कहूँ मैं दिले बेकरार का^{१०} ॥
मसनदे गुल मंज़िले शबनम^{११} हुई ।
देख रुखा दीदये बेदार का ॥

^१कर्णधार, खेनेवाला । ^२सहायक । ^३शान्ति । ^४दिल लगा ।
^५उत्था के । ^६कवि । ^७पद्य । ^८पहला । ^९यदि हाल । ^{१०}व्याकुल मन का । ^{११}शब । (रातभर जागनेवाली) नम् (ओस) की मंज़िल (आराम की जगह) गुल (फूलों) की मसनद (गद्दी) हुई । बेदार (जागती) दीदें (आँख) का रुखा (महश्व) देखो । भगवद्भजन में जागना मुसलमानों में भी महश्व की बात समझी जाती है ।

लेकिन मज़मून^१ इन शाह्रों के पास सिवाय ईशू^२ के और कुछ न था। कभी वह किसी का सरापा^३ और नाज़ और अन्दाज़^४ बयान करते हैं, कभी वह फिराक़ये^५ दर्द में मुब्-तला^६ हैं। इसके सिवाय और उनको कुछ सूझता ही नहीं। ऐसे मज़मूनों के लिये निहायत नर्म और शीरीं शब्दों के दूसरे काम में आही नहीं सकते। अगर फ़ारसी की वर्णमाला पर निगाह की जावे तो तुर्त साबित हो जावेगा कि इससे बढ़कर दुनिया में कोई ज़बान मुलायम और मीठी नहीं है। पस ऐज बराजे हिन्दी शब्द इन शाह्रों के नज़दीक सख्त (श्रुतिकटु) ठहरते गये, और इनकी जगह फ़ारसी और अरबी शब्द भरती होने लगे, मस्लन^८ पहले “पंखड़ी” काम में आता था, जैसे—

आपके उन लबों की^९ क्या कहिये। पंखड़ी एक गुलाब की सी है ॥

लेकिन बाद जो शाहर हुए उनके कानों में इस शब्द ने धाव किया। तुर्त वर्गेगुल^{१०} से बदल दिया—

(१) बर्गेगुल पर आपकी तस्वीर का धोका हुआ।

(२) गोया है नज़ाकत से, दो बर्गेगुले^{११} तर लब ॥

और इस तरह पर क़दम बक़दम खिंचते हम लोग मिर्ज़ा नोशह असदुल्लाह खाँ ग़ालिब और मिर्ज़ा रजबअलीबेग सुरूर की उर्दूइमु-अल्ला^{१२} का पहुँचे। दोनों निहायत मशहूर नाज़िम और नासिर अर्थात्

^१विषय। ^२शृङ्गाररस के। ^३नखशिख। ^४हावभाव। ^५वियोग के।
^६पीड़ित। ^७दिन पर दिन। ^८यथा, जैसे, उदाहरणार्थ। ^९ओठों की।
^{१०}बर्ग = पत्ती। ^{११}पंखड़ी।

^{१२}दिल्ली के मिरज़ा-ग़ालिब (सं० १८८२—१९५२ वि०) उर्दू और फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि तथा गद्य लेखक हो गये हैं। मिरज़ा सुरूर भी

गद्य और पद्य वाले, एक दिल्ली के और दूसरे लखनऊ के अभी हो गये हैं ।

दिल्ली राजधानी और “कलामुलमुलू मुलुकुलक कमाल” अर्थात् राजा की बोली बोलियों की राजा समझी जाती है । दिल्ली किले की ज़बान सब के लिये सनद^१ हो गयी ।

लेकिन वह केवल किले ही की ज़बान थी । ज़िले में जाट गूजरों की ज़बान से बढ़कर शायद किसी दू^२री ज़बान में दिहकानियत^३ न मिले । कहावत है, जब एक शाहर दिल्ली के नवाह^४ में पहुँचा, पूछा, किला कितनी दूर है ? लोगों ने जवाब दिया ‘पास है’ । आगे बढ़कर फिर पूछा । जवाब मिला ‘नज़दीक है’ ! आगे बढ़कर फिर पूछा जवाब पाया ‘नज़दीक है’ ! आगे बढ़कर फिर पूछा । लोगों ने कहा ‘क़रीब है ।’ जब किले का दर्वाज़ा दिखलाई दिया फिर पूछा । वहाँवालों ने बतलाया मुत्तसिल है^५ । अब इसी से आप लोगों को किले की उर्दूमुअल्ला की बिलकुल हकीकत^६ दर्याफ्त हो जायगी ।

इस उन्नीसवीं सदी के शुरू में डाक्टर गिलकृष्ट साहब ने मीर-अम्नन दिलहवी, बाग़बहार के मुसन्नफ़, और लल्लूलाल जी कवि आगरेवाले प्रेमसागर के मुसन्नफ़ को हुक्म दिया कि नसर (गद्य) की कुछ किताबें इस मुल्क की ज़बान में ऐसी बनावें कि जिनको पढ़कर साहब लोग इस मुल्कवालों की बोली समझ सकें और इस मुल्कवाले जो कुछ कि साहब लोग उनसे बोलें उसको समझ लें^७ । दोनों ग्रन्थ-कर्त्ता बेशक हैरान हुए होंगे, क्योंकि यह उनके लिए बिलकुल नयी बात

इसी समय के प्रसिद्ध उर्दू गद्य लेखक हुए । फिसाना अजायब नामक गद्य काव्य इन्हीं का लिखा है । “सरूर” लखनऊ के थे, पर अन्त में काशी नरेश के यहाँ मुलाजिमत में थे ।

^१प्रमाण । ^२गँवारपन, ग्रामीणता । ^३पदोस में । ^४लगा हुआ, सटा हुआ । ^५सत्य, तथ्य, सच्चा हाल । ^६मालूम ।

थी। दोनों ने किताब बनायी, मगर दोनों को एक एक नयी ज़बान बनानी पड़ी, लल्लूजी ने तो अपने प्रेमसागर में से बिलकुल फारसी शब्द निकाल डाले, यहाँ तक कि अपने मुरब्बी डाक्टर गिलक़ुस्ट के लिए भी साहब का शब्द नहीं लिखा। अफ़सोस लल्लूजी यह भूल गये कि खुद उनका नाम आधा अर्थात् 'लाल' फ़ारसी है। मीर अम्मन ने गो बाज़ जगह "निदान" और "टुक" ऐसे हिन्दी शब्द लिखे हैं कि जो काम में नहीं आते, तो भी बाग़वहार के आरम्भ ही में एक शक़ ऐसा फ़ारसी का लिखा है कि जिससे शायद साहब लोगों को तमाम उमर काम न पड़ेगा अर्थात् 'दल्क़पोश'^२ लखनऊ इस बात में कुछ पीछे नहीं रहा। लखनऊ में भी बादशाह था। लखनऊ के शाहर पीछे से आगे आ गये। मिर्ज़ा सुरूर का फ़िसाने अज़ाइब उस मिहनत की चोटी है कि जो आदमी ज़बान को दिखनौट बनाने में अपनी ताकतभर कर सकता है।

लेकिन अब बादशाह और बादशाही दोनों दिल्ली और लखनऊ की हमेशा के लिए दर्याबुद^३ हुईं। क़िला और महल सब हिन्दुस्तान के नक्शे में सुर्ख़ रङ्ग गये^४ शहर के भूठे और खुशामदी जो अब तक हमारी ज़बान के लिये सनद समझे जाते थे हर तरफ़ तित्तर बित्तर हो

^१ राजा साहब यहाँ चूक गये। "लाल" शब्द यहाँ फ़ारसी नहीं है। संस्कृत में "लल" धातु चाहने, लाड़ करने के अर्थ में आती है। उसी से प्राकृत के लल्लू, लल्ली, लाल, ललका, लाडिली, लाडले, लाला आदि शब्द बने हैं। फ़ारसी में लाल मणि के अर्थ में अवश्य आता है, परन्तु भारतीय नामों में 'लल्' धातु से बना लाल है।

^२ दल्क़ × पोश — गुदड़ी ओढ़नेवाला।

^३ (जिन स्थानों को नदी बहा ले जाती है अथवा जो स्थान नदी के भीतर आ जाते हैं, दर्याबुद^४ कहलाते हैं।) बह गयीं।

^४ नक्शों में अंग्रेजों का राज्य लाल रङ्ग से रङ्गा रहता है। अंग्रेजों के अधीन हो गये।

गये। और लोहे की सड़क और धूँ की गाड़ियाँ अब नित, हमारी कैसरा विकटोरिया की, ईश्वर दिन दिन बढ़ावे प्रताप उसका, हर तरह का प्रजा के लोगों को भारतवर्ष के हर एक हिस्से और कोनों से ले जाकर आपस में मिलाती हैं वह ज़रूर एक दूसरे से बातचीत करेंगे और एक दूसरे की सुनेंगे। तो अब क्या करना चाहिए। क्या उर्दू-मुअल्ला सीखने-के लिये दिल्ली के क़िले में जावें ? दिल्ली खुद अब दूसरे दर्जे का शहर गिना जाता है। क़िले में वह दीवान खास जिसमें अब तक लिखा हुआ है “अगर फ़िर्दौस बररुए ज़मीनस्त। हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त”^१ अजाइबखाना बनायी गयी। अगर वहाँ सनद के लिये किसी शाइर को तलाश करें तो पहरेवाले गोरे और सन्तरी “हुकमदर”^२ (who comes there) पुकारते हैं। पस^३ हम लोगों को अब सनद के लिये किसी दूसरी तरफ देखना चाहिये। जरूरत के मुवाफ़िक़ पूंजी हासिल करना चाहिये।

अटकल से कम ज़्यादा कोई पचास बरस गुजरते होंगे, सरकार ने अपनी कचहरियों से फारसी ज़बान उठा दी, और हुकम दिया कि इस मुल्क की बोली में काम किया जावे। सरकार का इन्साफ़ और सरकार की दानाई^४ इस तजबीज से^५ बखूबी जाहिर है ज़बान फ़ारसी तो उठ गयी, मगर हरफ़ फ़ारसी, और अमले वही फारसी वाले, जो अक्सर कायथ और मुसलमान हैं, ज्यों के त्यों बने रहे,। उन्होंने सरकार के हुकम की तामील^६ की कहीं कहीं हिन्दी क्रिया लिख दी और बिल्कुल शब्द बल्कि पदों की तर्कीब^७ जहाँ उन्हें हिन्दी बनाना कठिन मालूम हुआ

^१यदि स्वर्ग कहीं इस धरती पर है तो यहीं है, यहीं है, यहीं है।

^२कौन आता है ?, ^३पास—अतएव, इसलिये। ^४बुद्धिमानी।

^५मन्तव्य, ठहराव। ^६अनुसरण, पालन। ^७सङ्गठन।

ज्यों की त्यों फ़ारसी बाकी रही। नतीजा यह निकला कि एक नई ज़मात हुई—अर्थात् कचहरी की ज़बान।

बलवे के पहिले सरिश्ते तालीम इस देश में कायम हुआ और बहुतायत से यहाँ की ज़बान में किताबें छापी गयीं, लेकिन इसमें भी किसी क्रूर वही ग़लती हुई जो डाक्टर गिलक़ुस्ट के वक्त में अफ़सोस का कारण हुई थी, अर्थात् पण्डित लोग सोचते हैं कि जितने असली संस्कृत शब्द (चाहे वह समझ में आवें चाहे नहीं) लिखे जावें उतनी ही उनकी नामवरी का सबब है, और इसी तरह मौलवी लोग फ़ारसी और अरबी शब्दों के लिये सोचते हैं। गरज पुल बनाने के बदले दोनों खन्नक को^१ गहरा और चौड़ा करते चले जाते हैं। उन लोगों ने अपने नज़दीक एक का नाम हिन्दी रखा है, और दूसरे का नाम उर्दू। वह छोटी सी पुस्तक 'बालबोध' जो देवनागरी पढ़ने वाले लड़कों को हरफ सीखते ही दी जाती है, गो मेरे नाम से छापी गई है लेकिन मुझसे उसका कुछ सम्बन्ध नहीं। उसमें पूरे के लिये समाप्ति लिखा है, गर्मी के लिये उष्णता, तेज़ के लिये तीक्ष्ण, पेड़ के लिये वृक्ष, मज़बूती के लिये दृढ़ता, पैदा के लिये उत्पन्न, साफ़ के लिये स्पष्ट, बराबर के लिये तुल्य और इसी तरह "किस्सै सूरजपुर" में कि वह बच्चों में हुरूफ़तहज़ी ख़तम होते ही देते हैं 'अराज़ी मुन्क़सिमा' बटी हुई ज़मीन की जगह और 'खुर्द वा कलां सुकनाये देह' छाटे बड़े गांव के रहनेवालों की जगह लिखा है।

शुद्ध हिन्दी के तरफ़दार (और उनमें बड़े बड़े जबर्दस्त आदमी हैं) हगिज़ खुश न होंगे, जबतक कि हम लोगों की ज़बान से सारे फ़ारसी शब्द निकाल बाहर न किये जावें। वह लोग फ़ारसी के आने से पहले जो प्राकृत के शब्द जारी थे उन पर भी सन्तोष न करके वेदों का ज़माना लाना चाहते हैं। वह अपने बिलकुल शब्दों को नये

सिर से पाणिनि की टकसाल में ढलवाना चाहते हैं। वह खुद नहीं जानते कि इस अपनी खयाली ज़बान का क्या नाम रखें। भुलावे के लिये वह कभी कभी उसको ब्रजभाषा बतला देते हैं। मगर ब्रजभाषा और ज़बान के शब्दों को ख़ारिज नहीं करती है। सुनिये भिखारीदास अपने काव्यनिर्णय में क्या कहता है—

ब्रजभाषा भाखा रुचिर कहै सुमति सब कोई ।

मिलै संस्कृत पारस्यौ पै अति सुगम जो होय ॥

और भी एक कवि ने कहा—

अन्तरवेदी नागरी गौड़ी पारस देस ।

अरु अरबी जामें मिलै मिश्रित भाषा बेध ॥

सिवाय इसके एक श्लोक भी सुनने में आया है—

संस्कृतं प्राकृतं चैव शौरसेनं च मागधम् ।

पारसीकमपभ्रंशम् भाषायाः लक्षणाणि षट् ॥

यह ज़बान (ब्रजभाषा) अब थोड़ी दूर में अर्थात् केवल मथुरा के जिले में और उसके आसपास बोली जाती है। उसके शुद्धरत^१ कुछ उनके किसी ज्ञाती^२ गुण या उसके काम की होने के कारण नहीं हैं, वरन् राजा जयसिंह सवाई^३ जयपुर वाले की कदरानी

^१प्रसिद्ध । ^२जाती (व्यक्तिगत) स्वयं अपने । ^३यहाँ राजा साहब ने भी भूल की। न तो बिहारी (सं० १६६०-१७२० वि० अनुमानतः) अठारहवीं सदी ईसवी में था और न राजा जयसिंह सवाई से सम्बन्ध था। बिहारी के सम्मानदाता मीरजा राजा जयसिंह थे, जो हिन्दी की रसिकता के नाते विशेष विख्यात न थे, बल्कि यों कहना ठीक होगा कि बिहारी का आदर करने से “मीरजा” जी की भाषा-काव्य रसिकों में गिनती हो गयी बिहारी का स्वयं जयसिंह की अरसिकता की ओर इसारा है “भेट भये जयसाहिसों भाग चाहियत भाज” ।

से कि जो अठारहवीं सदी में हो गया है। उसने बड़े बड़े भारी ईन्श्राम^१ देकर ब्रजभाषा की कविताई की रौनक^२ दी। उसने बिहारी के दोहरों के लिये एक एक अशर्फी दे डाली, और सच तो यों है कि बिहारी ही ने ब्रजभाषा को अमर किया। अक्सर^३ छन्दों में जो हिन्दुओं को पसन्द है ब्रजभाषा के कारण सहज में कविता बन जाती है। इसलिये हिन्दुस्तान के और भी हिस्सों में कवि लोग इस जबान को काम में लाते हैं यह दोहरा बिहारी का है—

लिखन बैठि जाकी सबिहि^४ गहि गहि गरब गरूर ।

भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ॥

ऐसी शुद्ध हिन्दी चाहने वालों को हम इस बात पर यकीन दिला सकते हैं कि जब तक कचहरी में फ़ारसी हरफ़ जारी है इस देश में संस्कृत शब्दों के जारी करने की कोशिश बेफ़ाइदा होगी। देवनागरी हरफ़ ख्वाह^५ अंग्रेज़ी हरफ़ का जारी होना कहाँ तक संभव है ? और अगर जारी हो तो क्या नतीजा निकले यह एक जुदी बात है, और अभी इसका अच्छा निर्याय नहीं हुआ है और न इसका यहाँ मौका है। सिवाय इसके सर चार्ल्स लायल के इस बचन का भी जरूर ख्याल रखना पड़ेगा कि जब कोई ज़बान एक बार मर जाती है दुबारा ज़िन्दा नहीं हो सकती, क्योंकि गो उसी असल^६ और नसल^६ के आदमी रहे हों, सम्भव नहीं कि फिर ठीक वही सब समान उसके दर्मियान जमा हो सकें कि जिनसे उस मुरदा जबान जा वजूद हुआ था, और

^१इनाम, पारितोषिक। ^२समुन्नत और सम्मानित किया।

^३बहुधा।

*सबिहि—शबीह, चित्र। इसी शब्द से बङ्गला का 'छबि' शब्द चित्र के अर्थ में जाता है।

^५या चाहे। ^६मूल। ^६वंश।

वह तो कब हो सकता है कि वही सब सामान उन तमाम कौमों के दर्मियान भी मौजूद हो जावें कि जिनसे उनको काम पड़ता है।”

जब यह सवाल पैदा हो सकता है तो हम लोगों को क्या करना चाहिये, किस तरह फिरना चाहिये जिसमें हमको सीधी राह मिले ? हम लोगों की ज़बान का व्याकरण (चाहे आप उसको उर्दू कहें चाहे हिन्दी) किसी क्रूर काइम^१ हो गया है। जो बाकी है जिस क्रूर जल्द काइम हो जावे विहतर^२। इस ज़बान का दर्वाज़ा हमेशा खुला रहा है और अब भी खुला रहेगा। उसमें शब्द बेशक आये और बराबर चले आते हैं। क्या भूमियों की बोली, क्या यूनानी (यहाँ तक कि यूनानी लफ़्ज़ दीनार^३ पुरानी पुरानी संस्कृत पोथियों में भी पाया जाता है, और नानक^४ भी यूनानी से निकला है,) क्या रूमी क्या फ़ारसी क्या अरबी क्या तुर्की क्या अंग्रेज़ी क्या किसी मुल्क के शब्द जो कभी इस दुनियाँ के पर्दे पर बसे हैं या बस्ते हैं, सब के वास्ते इसका दर्वाज़ा खुला रहा है और अब भी खुला रहेगा, अब इसे बन्द

^१स्थिर । ^२अधिक अच्छा ।

^३दीनार सुवर्ण सावरेन (Sovereign) आदि शब्दों का मूल जानना कठिन है। प्राचीन काल में भिन्न देशों और राष्ट्रों में परस्पर विनिमय के कारण सिक्कों और उनके नामों में विनिमय होना सम्भव है दीनार का मूल यूनानी अनिश्चित है। इस शब्द का व्यवहार यूनानी, अरबी तुर्की, फ़ारसी, और संस्कृत सभी में समान रूप से होता है।

^४नानक का अर्थ नान्हा और छोटा है मराठी में लाहाण, लाहाणा, नान्हा, और जैसे नाना साहब, गुजराती में भी नान्हा, हिन्दी में नान्हा छोटे के अर्थ में प्रयुक्त होता आया है। ‘लाहाण’ संस्कृत के ‘लघु’ शब्द से बना सौर ‘अधिकलघु’ के अर्थ में आया। उसी से देशकाल के अन्तर से ‘नानक’, भी बनता है। यूनानी का कोई शब्द नानक का मूल है ऐसा समझना राजा साहिब की भूल है।

करने की कोशिश करना सिवाय इसके कि किस क्रूर मूजिव^१ हमारे हान^२ और नुकसान का है। सोचना चाहिये कि कैसा असम्भव है रोक टोक बेशक मुनासिब, और यही हो सकती है। वह कौन मनुष्य है कि अपने ताल में जिससे तमाम गाँव सिंचता है, पानी आने की नालियाँ बन्द करे। गंगा की धारा का बहना तो आप बन्द नहीं कर सकते लेकिन यह अवश्य कर सकते हैं कि बांध और पुश्ते बना कर उन्हीं के दर्मियान उसको रखे। अगर बाढ़ आवे समय समय पर उन बाँधों को हटा के और उनकी मरम्मत करा के ज़ियादा फैलाव देते जावें। सुफे फिर सर चार्लस लायल साहिब का वचन याद आया “यह एक बहुत अचरज की बात खोज के लायक है कि वह कौन सा क़ायदा या क़ानून है कि जिसके मुताबिक न केवल शब्द और मुतवज्जह^३ किया जाता है, और एक को छोड़ कर दूसरा ज़ियादा रवाज पाता है। जब हम उस राह को सोचते हैं जिससे नये शब्द और मुहावरे पैदा होते हैं और पुराने नाश हो जाते हैं, ज़ाहिरा^४ मालूम होता है कि यह बेसोच विचार और बेठौर-ठिकाने मानो एक खेल है, तो भी फिर ग़ौर करने से साबित होगा कि इसके लिये क़ायदा और क़ानून मुकर्रर है कि जिसके बमूजिब^५ जब मौत और ज़िन्दगी के लिये ज़बानों की आपस में लड़ाई होती है एक की जय और दूसरे की पराजय हो जाती है। बाज़ वक्त ज़रासी आसानी किसी नये तौर^६ के उच्चारण और अक्षरों के जोड़ने में वा संक्षेप के कारन वा बोल में मीठा और प्यारा लगन से जय^७ पराजय का पल्ला उलट देती है। बाज़ वक्त इससे ज़ियादा और मदद पहुँच कर एक को शिकस्त और दूसरे को फ़तह^८ देती है—मसलन् सर्कारी अमले^९ और अफ़सरों का इख़्तियार^{१०} मुल्की वज़ादारी^{११} मक़दूरवाले लोग चाह

^१कारण। ^२हानि। ^३अधिक आदरणीय। ^४ऊपर के। ^५अनुसार। ^६ढङ्ग के। ^७पराजय। ^८विजय। ^९कर्मचारी। ^{१०}अधिकार। ^{११}शिष्ट व्यवहार।

खानदान के सबब, वह ग्रन्थकर्त्ता जिनकी लिखावट लोगों को पसन्द है, वह लोग जिनकी सभाओं में वक्तृता और उपदेश का काम पड़ता है, वह गवर्नमेंट कि जो खास करने लिखावट की यकसानी^१ और दिहाती जवानों की दुरुस्ती के लिये मदरसे मुकर्रर करती है।” हम लोगों को जहाँ तक बन बड़े चुनने में उन शब्दों को लेना चाहिये कि जो “आम फ़हम वह खाह पसन्द हैं”—अर्थात् जिनको जियादा आदमी समझ सकते हैं और जो यहाँ के पढ़े लिखे आलिम^२ फ़ाजिल पण्डित विद्वान् की बोल चाल में छोड़े नहीं गये हैं और जहाँ तक बन पड़े हम लोगों को हर्गिज ग़ैर मुल्क के शब्द काम में न लाने चाहिये और न संस्कृत की टकसाल क़ायम करके नये नये ऊपरी शब्दों के सिक्के जारी करने चाहिये, जब तक कि हम लोगों को उसके जारी करने की ज़रूरत न साबित हो जाय, अर्थात् यह कि उस अर्थ का कोई शब्द हमारी ज़बान में नहीं है, या जो है अच्छा नहीं है, या कविताई की ज़रूरत या इल्मी ज़रूरत या कोई और खास ज़रूरत साबित न हो जाय। मैंने अक्सर बड़े बड़े मशहूर मुसन्नफ़ और शाह्रों से पूछा कि साहिब आप कोई क़ायदा बतला सकते हैं कि जिससे हम एक शब्दों को छोड़ कर दूसरे को इस्तिथार करें। सब ने एक ज़बान यही जवाब दिया कि “जो कान को अच्छा लगे।” अब मुश्किल यह है कि कान सब लोगों का एक ही नहीं है। एक के कानों को एक लफ़्ज़^४ अच्छा लगता है दूसरे के कानों को दूसरा। जो हो। हम लोगों को एक हिन्दू जान्सन दक्क़ार है कि जो काम अंग्रेजी जान्सन ने अंग्रेजी ज़बान के लिये किया वह हिन्दू जान्सन हमारी ज़बान के वास्ते करें अर्थात् जिसकी खोज और तलाश से हमारी ज़बान की यक़ीनी^५ हद्द क़ायम हो जावे और उनके अन्दर काफ़ी फैलाव रहे कि

^१समानता। ^२विद्वान। शास्त्री पारङ्गत। ^४शब्द। ^५वास्तविक, ठीक ठीक।

ज्यों ज्यों तरक्की होती जाय गुंजाइश मिलती जाय । इसमें अरबी फ़ारसी संस्कृत (और अब कहना चाहिये अंग्रेजी) के भी शब्द कन्धे से कन्धा भिड़ा कर यानी दोश बदोश चमक और रौनक पावें, न इस बेतर्तीबी^१ से कि जैसे अब गड़बड़ मच रहा है, बल्कि एक सस्तनत^२ के मानन्द^३ कि जिसकी हृदय क्रायम हो गयी है और जिसका इन्तिज़ाम मुन्तज़िमकी^४ अक्लमन्दी की गवाही^५ देता है ।

यहाँ एक शख्स^६ ने लुग़त (कोष) अपनी ज़बान का बनाना चाहा था बल्कि शुरू भी किया था और तरीका^७ उसका यह रक्खा था कि उसमें बिल्कुल वे अल्फ़ाज (शब्द) रहें जो किसी तरह पर भी पश्चिमोत्तर देश वालों की ज़बान पर आते हैं और जिन पर इस क्रिस्म के निशान दिये जावें कि जिससे साफ़ मालूम हो जाय कौन सा लफ़्ज़ (शब्द) सिर्फ़ देवनागरी में लिखना पसन्द है कौन सा फ़ारसी हफ़ों में कौन सा फ़ारसी की ज़बान पर आता है कौन सा ग़ैबारी की ज़बान पर, किसको सिर्फ़ संस्कृत के पंडित बोलते हैं और किसको मौलवी और मुन्शी लोग, कौन से शब्द हिन्दी की कविताई के लिये हैं कौन से फ़ारसी अरबी की; कौन से इल्मी ज़रूरत के लिये नये ईजाद^८ किये गये हैं कौन से तर्क^९ हो गये । गरज जहाँ तक मुमकिन है निशानों के जरिये से जुदा जुदा मौका उनके काम में लाने का दिखलाया जाय । जिन पर कुछ निशान न हो समझा जाय कि वह सब हालत में सब लोग काम में ला सकते हैं और मानी लिखने के वक्त ज़रूरत

^१ इस क्रमहीनता से । ऐसा बेसिलसिला । ^२ राज्य के । ^३ तरह, समान, बराबर । ^४ प्रबन्धकर्ता की । ^५ अक्लमन्दी की गवाही देता है, बुद्धिमत्ता का प्रमाण देता है, बुद्धिमानी साबित या सिद्ध करता है । ^६ व्यक्ति । ^७ ढंग । ^८ सुवक्ताओं की । ^९ आविष्कार ईजाद किये गये हैं — रचे गये हैं । ^{१०} स्थित !

और मौका मुताबिक^१ उनके निकास वगैरह का भी कुछ ज़िक्र हो और मिसालें भी सनदी शाहर और मुसन्निफों की दी जावें, मगर शायद अपनी कभी लियाक़त^२ के बाइस या लाइक आदमियों की मदद न मिलने के सबब या फुर्सत की कमी से उस शख्स ने बिल्कुल इसका खयाल छोड़ दिया^३ ।

^१अनुसार । ^२योग्यता के । ^३राजा शिवप्रसाद के हिन्दी व्याकरण का “अवशेष” या उर्दू सफ़ोनहवका “ततिम्मा” भी देख लेना फाइदे से खाली न होगा ।

६--स्वामी दयानन्द सरस्वती

गुजराती ब्राह्मण थे । सं० १८८१ वि० में जन्मे और सं० १९४० में स्वर्गवास हुआ । पहले संस्कृत में ही व्याख्यान देते और शास्त्रार्थ करते थे, परन्तु जनता के लाभ की दृष्टि से मातृभाषा गुजराती होने पर भी इस दूरदर्शी और विद्वान् संन्यासी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी का ही प्रचार किया । अपने ग्रंथ भी हिन्दी में ही लिखे हिन्दी की उन्नति और प्रचार, आर्य्य समाज का, जिसके प्रवर्तक थे, एक विशेष लक्ष्य बनाया । अकेले इन स्वामी जी ने हिन्दी का जितना उपकार किया हमारा अनुमान है कि अनेक सुसङ्गठित संस्थाओं ने मिलकर भी अब तक उतना नहीं कर पाया है । इनकी हिन्दी खड़ी बोली थी । विषय प्रायः धार्मिक ही होने से तत्समों की ही भरमार थी । प्राकृतिक तत्त्वों का अत्यन्त कम प्रयोग करते थे । आज कल की शैली पर विचार करके कहना पड़ेगा कि स्वामीजी की भाषा अन्य भाषा-भाषी होने के दोषों से मुक्त नहीं थी । हाल चाल का समाचार के स्थान में “वर्त्तमान” हर्ज वा “हरजे” के स्थान में “हर्कत”, “पसन्द करने” की जगह “प्रसन्न करना”, बिगड़ने को “बिगणना” आदि, आजकल के गुजराती संन्यासियों की तरह लिखते थे । कहा जाता है कि आरम्भ में हिन्दी के अन्य पण्डित इनकी भाषा का संशोधन कर देते थे और कई पुस्तकें, जो प्रायः अनुवाद हैं, स्वामीजी के नाम से औरों की लिखी हैं । यह बातें असम्भव नहीं हैं क्योंकि जितने विस्तार का काम स्वामीजी ने उठाया था अकेले करने का न था और मातृभाषा गुजराती होने से कमसे कम आरम्भ में तो संशोधन अनुचित नहीं था । इनका जीवनचरित विस्तारपूर्वक लिखा गया है और पुस्तकें आर्य्यसमाज में व्यापक सी हैं, इसलिए विशेष उल्लेख अनावश्यक समझा गया । इनके दो पत्र नमूने की भांति दिये

जाते हैं। यह स्पष्ट ही है कि यह पत्र साहित्य की तथा प्रकाशित किये जाने की दृष्टि से नहीं लिखे गये, इसी लिये वाक्यों के परस्पर सम्बन्ध में तथा अर्थपूर्णता में शिथिलता भी देख पड़ती है, जो उपेक्षणीय है।

पत्र

राजा शिवप्रसादजी आनन्दित रहो ! आपका पत्र मेरे पास आया देखकर अभिप्राय जान लिया। इससे मुझको निश्चय हुआ कि आपने वेदों से ले के पूर्वभीमांसा पर्यन्त विद्या पुस्तकों के मध्य में से किसी भी पुस्तक के शब्दार्थ सम्बन्धों को जाना नहीं है। इसलिये आपको मेरी बनायी भूमिका का अर्थ भी ठीक ठीक विदित न हुआ। जो आप मेरे पास आके समझते तो कुछ समझ सकते। परन्तु जो आपको अपने प्रश्नों के प्रत्युत्तर सुनने की इच्छा हो तो स्वामी विशुद्धानन्द वा बाल शास्त्रीजी को खड़ा करके सुनियेगा तो भी आप कुछ कुछ समझ लेंगे क्योंकि वे आपको समझावेंगे तो कुछ आशा है समझ जायेंगे। भला विचार तो कीजिये कि आप उन पुस्तकों के पढ़े बिना वेद और ब्राह्मण पुस्तकों का कैसा आपस में सम्बन्ध क्या क्या उनमें है और स्वतःप्रमाण तथा ईश्वरोक्त वेद और परतःप्रमाण और ऋषि मुनि कृत ब्राह्मण पुस्तक हैं इन हेतुओं से क्या क्या सिद्धान्त सिद्ध होते और ऐसे हुए बिना क्या क्या हानि होती है इन विद्या रहस्य की बातों को जाने बिना आप कभी नहीं समझ सकते।

सं० १६३७ मि० वै० व० सप्तमी, शनिवार

दयानन्द सरस्वती

लाला जीवनदासजी आनन्दित रहो ! पत्र आपका आया समाचार विदित हुआ। यहाँ पारसी खत पढ़ने वाले बहुत कम हैं, इंगलिश के पाठक बहुत हैं। इसलिए जब कभी लिखें तब नागरी वा इङ्गरेजी में लिखें। इस पत्र का मतलब हम ठीक ठीक नहीं समझते हैं, जितने समझा है उतने का उत्तर लिखा जाता है। (सूद) शब्द का अर्थ

जो रसोई करने वालों का है। वही अर्थ अन्यत्र सुत्रादि में भी है। पाककर्ताका कोई दृढ़ निश्चय नहीं हो सकता क्योंकि पाचक सब वर्णों में होते हैं अब तो इससे सनातन का व्यवहार ही प्रमाण हो सकता है। जो आप लोगों के यज्ञोपवीत होता और धरावट अर्थात् विधवा को पुनः दूसरे के घर में बैठाना नहीं होता तो शूद्र वर्ण गणना आप लोगों की नहीं अब यह विचारना चाहिये कि (सूद्र) लोग क्षत्रिय हैं अथवा वैश्य। जो राजधर्म राज्य करना आपके पुरुष शौर्यादि गुणयुक्त युद्ध में कौशलवाले हुये हों तो क्षत्रिय और जो वैश्य के व्यापारादि गुण हों तो वैश्य समझना चाहिये। अब आप लोग ही इसका निश्चय कर लीजिये।

और जो कभी (सूत) शब्द विगण के^१ सूत्र हो गया हो तो आप अवश्य क्षत्रिय वर्ण हैं। हमने सुना है कि आजकल बाबू नवीनचन्द्र राय लाहौर में हैं और विधवा विवाह में प्रयत्न कर रहे हैं और आर्य्य-समाज लाहौर भी इस बात में बाबूजी से सम्मत हो गया है। ये ब्रह्म समाजी लोग भीतर और तथा बाहिर और बात रहते हैं इनका यह भी मतलब होता है कि जैसे हम लोग कृश्चिनों के^२ तुल्य अपमानित हुए हैं वैसे आर्य्य समाज भी हो जाय। परन्तु जो अक्षत योनि अर्थात् जिसका पुरुष के साथ कभी संयोग न हुआ हो उस कन्या के पुनर्विवाह करने में कुछ दोष नहीं और जिसका पुरुष से सम्मेलन हुआ हो उसका नियोग करने में अपराध नहीं। इससे विपरीत करने से शास्त्र से विरुद्ध होने से अब अथवा पश्चात् बहुत कष्ट भोगना पड़ेगा अर्थात् वर्ण वाह्य^३ होना होवे तौ भी कुछ संशय नहीं सब से मेरा आशीर्वाद कहिएगा।

दयानन्द सरस्वती

१ विगड़ के। २ ईसाइयों के। ३ वर्ण से बाहर (जाति बाहर नहीं)।

७—राजा लक्ष्मणसिंह

राजा लक्ष्मणसिंह आगरे के थे । सं० १८८३ वि० में जन्म हुआ, १९१३ में डिप्टी कलेक्टर हुए और १९४६ में पेंशन ली । १९२१ में राजा की पदवी मिली । १९२३ वि० में स्वर्गवास हुआ । कविताकाल १९१६ से १९२३ तक समझना चाहिए । इनका गद्य शकुन्तला नाटक १९१६ में प्रकाशित हुआ पीछे पद्य रचना भी करने लगे । परन्तु इन्होंने अनुवाद ही अनुवाद लिखे । इनकी रचना मधुर और खड़ी हिन्दी शुद्ध होती थी । फारसी अरबीके शब्द नहीं रखते थे । वाक्य अच्छे गठे हुए होते थे । अनावश्यक शब्दों से बचते थे । आजकल अंग्रेजी के प्रभाव से वाक्यपूर्ण्यथं वह, वे, उसने, उसको, उसे आदि सर्वनामों के ठूसने की प्रथा जोरों से चल पड़ी है । लेखकों को डर लगा रहता है कि कर्त्ता और कर्म में झगड़ा न चल जाय । “जो राजा प्रजा का निर्भार करता है नित्य चिन्ता ही में रहता है” “उचित नहीं है कि इस समय कण्व के चेलों के आने का सन्देशा कहूँ” इन वाक्यों में आजकल के अग्रणी लेखक “नित्य” के पहले “वह” और “कहूँ” के पहले “उनसे;” अवश्य ही लगा देते । राजा साहब लिखते हैं “भेटने योग्य स्थान में बैठा हूँ” अब “भेट करने योग्य” लोग अधिक उपयुक्त समझेंगे । सद्गल मिश्र के “निन्दती” पर पाठक हमारा नोट देखें । पाठकगण वह भी देखें मिश्रित और शुद्ध हिन्दी के पक्षपाती दोनों राजाओं में, जो समकालीन थे, कितना अन्तर था । इनकी शकुन्तला के कई संस्करण निकल चुके हैं और सब में पाठ भेद है ।

शकुन्तला नाटक

अंक २

स्थान—राजभवन

(एक बूढ़ा द्वारपाल स्वांस भरता हुआ आया)

द्वारपाल। हाय ! बुढ़ापे ने मेरी क्या दशा कर दी है । यही छड़ी जिससे मैं आगे रनवास में द्वारपाली का काम भुगतता था अब बुढ़ापे में मेरे चलने का सहारा बनी है । (बाहर से शब्द हुआ कि राजा से कहो कुछ आवश्यक काम है) मुझे कुछ समाचार राजा से भुगताने हैं सो जब रनवास को जायँगे तब कहूँगा, परन्तु इसमें बिलम्ब न होना चाहिये । (दौले आगे की चला) मैं क्या कहने को था । हाँ, यह कि कएव के चेले आशीर्वाद देने आये हैं । हे देव, बुढ़ापा भी मनुष्य को कैसी आपदा है । इस अवस्था में मनुष्य की बुद्धि बुझते दीपक के समान मन्द कभी चैतन्य हो जाती है । (इधर-उधर फिरकर देखकर) महाराज वह बैठे हैं, अभी अपनी प्रजा का सन्तान के सहश समाधान करके एकान्त में गये हैं; जैसे गजराज दिन में सब हाथियों को इधर-उधर भेजकर आप शीतल छाँह में विश्राम लेने जाता है । राजा अभी धर्मासन से उठे हैं; इसलिये मुझे उचित नहीं है कि इस समय कएव के चेलों के आने का सन्देशा कहूँ, नहीं तो राजा विश्राम को जाने से रुक जायँगे, परन्तु जिनके सिर पृथ्वी का भार है उन्हें विश्राम कहाँ होता है । सूर्य के रथ में घोड़े सदैव जुते ही रहते हैं । पवन दिन रात चला ही करता है, शेषनाग सदा पृथ्वी को सिर पर धरे ही रहता है, ऐसे ही जिसने प्रजा की कमाई से छठा भाग^१ लिया उसको किसी समय विश्राम नहीं है । (इधर-उधर डोलने लगा) ।

^१स्मृतियों के अनुसार राजा को प्रजा की आय का छठा भाग कर के रूप में लेना चाहिये ।

(दुष्यन्त और मादव्य कुछ सेवकों समेत आये)

दुष्यन्त । (अकुलाता सा) याचक तो अपना वांछित पाकर प्रसन्नता से चले जाते हैं, परन्तु जो राजा अपने अन्तःकरण से प्रजा का निर्धार करता है, निर्य चिन्ता में ही रहता है । पहले तो राज बढ़ाने की कामना चित्त को खेदित करती, फिर जो देश जीत कर वश किये उनकी प्रजा के प्रतिपालन का नियम दिन रात मन को विकल रखता है, जैसे बड़ा छत्र यद्यपि घाम से रक्षा करता है परन्तु बोझ भी देता है ।

(दो ढाढ़ी गाते हुए आये)

कड़खा

प० ढाढ़ी । निज कारण दुख न सहौ सहौ पराये काज ।
राज-कुलन व्यवहार यह सो पाखहु महाराज ॥
अपने सिर पर लेत हैं वर्षा शीतरुघाम ।
जिहि तरुवर हित पथिक के निज तर दै विश्राम ॥

छुप्पय

दू० ढाढ़ी । दुष्ट जनन बसकरन लेत जब दण्ड प्रचंडहि ।
देत दंड उन नरन खलत मर्याद जो छंडहि ॥
करत प्रजा प्रतिपाल कलह के मूल बिनासहि ।
जिमि निमित्त नृपजन्मधर्म सब करत प्रकासहि ॥
महाराज दुष्यन्त जू चिरजीवौ नित नवल थय ।
मेदि विघ्न उत्पात सब परजहि करि राखौ अभय ॥

दोहा

धन वैभव तौ औरहू बहुत क्षत्रियन माहि ।
पै सुप्रजा हित तुमहि से अधिक भेद कछुनाहि ॥

सोरठा

राखत बन्धु समान, याही ते तुम सबन को ।
करत मान सम्मान, दुःख न काहू देत हो ॥

दुष्यन्त । इस राग के सुनने से परिश्रमों का दुःख मिट कर चित्त नया सा हो गया है ।

माढव्य । सत्य है जैसे थके बैल की सब थकावट उस समय उतर जाती है जब लोग कहते हैं कि ये आये बैलों के राजा ।

दुष्यन्त । (मुसक्याकर) आहा ! मित्र तू यहीं है ? आ एकांत में बैठे । (राजा और माढव्य दोनों बैठे)

माढव्य—(कान लगाकर) मित्र संगीतशाला की ओर कान लगाओ देखो बीन की तान कैसी मधुर आती है रानी हंसमती तुम्हारे सुनाने को किसी नये गीत का अभ्यास कर रही हैं ।

दुष्यन्त । चुप रह सुनने दे ।

द्वारपाल । (आप ही आप) अभी राजा का ध्यान दूसरी ओर है, कुछ ठहर कर कहूँगा ।

(अलग चला गया)

(नेपथ्य में राग कालंगड़ा इकताला)

अमर तुम मधु के चाखनहार ।

आम की रसभरी मृदुल मञ्जरी-तासों प्रीति अपार ॥

रहसि रहस नित रस लेवे को धावत है करि नेम ।

क्यों कल आयो कमल बसेरे कित भूले प्यारी को प्रेम ॥

दुष्यन्त । आहा ! यह गीत कैसा प्रेम उपजाती है ।

माढव्य । आप ने अर्थ समझ लिया, मेरी समझ में तो नहीं आया ।

दुष्यन्त । (मुसक्याकर) एक समय मैं हंसमती पर आसक्त था और अब इतने दिन बिछुरे हो गये हैं, इससे उलहना देती है । मित्र तू जा हमारी ओर से कह दे कि रानी हम तेरी चेतावनी को समझे ।

माढव्य । जो आज्ञा महाराज की । (हौले से कह कर) परन्तु तुम तो मित्र ऐसी कहते हो जैसे कोई तीक्ष्ण बरछी की नाल को पराये हाथ से

पकड़ना चाहे । मुझे यह अच्छा नहीं लगता है कि रोस भरी स्त्री से ऐसा सन्देशा जाकर कहूं ।

दुष्यन्त । जा सखा, तेरी चतुराई की बातें उसका रोस मिटा देंगी ।

माढव्य । धन्य है । अच्छा संदेशा दिया । देखिए क्या हो ।

(बाहर गया)

दुष्यन्त । (आप ही आप) यह क्या कारण है कि यद्यपि मुझे किसी स्नेही का वियोग नहीं है तो भी विरह का गीत सुनते ही मेरे चित्त को उदासी हो जाती है । यह कारण हो तो हो कि सुन्दर रूप देख कर मधुर गान सुनकर मनुष्य को जन्मान्तर की प्रीति का स्मरण होता है ।

द्वारपाल । (उदास होकर और आगे बढ़कर) महाराज की जय हो । हिमालय की तराई के बनवासी दो तपस्वी कुछ स्त्रियों समेत आये हैं और कण्वमुनि का संदेशा लाये हैं । महाराज की क्या आज्ञा है ?

दुष्यन्त । (आश्चर्य से) क्या ! तपस्वी स्त्रियों के साथ आये हैं ?

द्वारपाल । हाँ महाराज ।

दुष्यन्त । सोमराट से कह दो कि बनवासियों को वेद की विधि से सत्कार करके लिवा लावे । मैं भी उनसे भेंटने योग्य स्थान में बैठता हूँ ।

द्वारपाल । जो आज्ञा ।

(बाहर गया)

दुष्यन्त । कंचुकी ! हमको अग्निस्थान की गैल बताओ ।

कंचुकी । महाराज यह गैल है (आगे आगे चला) यह द्वार जिसमें दाभ बिछे हैं और होम धेनु बँधी है अग्निहोत्र का स्थान है । आप पधारिये ।

(नौकरों के कंधों पर सहारा लेकर दुष्यन्त यज्ञ स्थान की देहरी पर गया)

दुष्यन्त । कण्वमुनि ने क्या संदेशा भेजा होगा । कहीं तपस्वियों के

तप में किसी ने विघ्न तो नहीं डाला, अथवा तपोवन के जीवों को किसी ने सताया तो नहीं, अथवा मेरे पापों से तपस्वियों की कोई लता बेलों-का फूलना तो नहीं मिट गया, ये सब असमंजस मेरे चित्त को व्याकुल करते हैं।

कंचुकी। जिस बात की चिन्ता महाराज को है सो कभी न हुई होगी, क्योंकि तपोवन के विघ्न तो केवल आपके धनुष की टंकार ही से मिट जाते हैं। मेरे जान ये तपस्वी महाराज के सुकर्मों से प्रसन्न होकर धन्यवाद देने आये हैं।

(शारद्वत और शारङ्गरव और गौतमी शकुन्तला का हाथ गहे हुये आये और उनके आगे आगे बूढ़ा द्वारपाल और पुरोहित भी आये)

द्वारपाल। इधर आओ, महात्माओ इस मार्ग आओ !

शारङ्गरव। हे मित्र शारद्वत, देखो जिस राजा के अधीन संसार के सर्व सुख हैं और जो सब मनुष्यों का आदर सम्मान करता है सो वह विराजमान है। यहाँ कोई कैसा ही आवे निरादर किसी का नहीं होता; परन्तु मेरा चित्त सदा सांसारिक बातों से विरक्त रहा है, इसलिए आज बहुत से मनुष्यों में आने से मन घबराता है।

शारद्वत। सत्य है। जब से नगर में धँसे हैं तब से मेरी भी वही दशा है, परन्तु मैंने तो अपना मन ऐसे समझ लिया है जैसे कोई निर्मल जल से नहाया किसी तेल मिट्टी लपेटे हुये के साथ परबस पड़ जाय अथवा शुद्ध मनुष्यों को अशुद्ध के साथ और जागते हुये को सोते के साथ स्वतन्त्र को बँधुए के साथ रहना हो और अपने मन को धीरज दे।

पुरोहित। इसी से तो आप सरीखे सज्जनों की बड़ाई है।

शकुन्तला। (बुरा शकुन देखकर) हे माता, मेरी दहिनी आँख क्यों फरकती है ?

गौतमी। द्रैव कुशल करेगा। तेरे भर्ता के कुलदेव अमंगलों को दूर करके तुम्हें सुख देंगे।

(सब आगे बढ़ें)

पुरोहित । (राजा को बतलाकर) हे तपस्वियो, वर्णाश्रम की रक्षा करनेवाले महाराज आसन पर बैठे तुम्हारी बाट ढेरते हैं ;

शारङ्गरव । यही हमारी चाह थी, क्योंकि सदा की रीति है कि फल आये वृक्ष नवता है, सुखद जल धारण करके मेष भुक्ता है, ऐसे ही परोपकारी नर सम्पत्ति पाकर अभिमान त्यागते हैं ।

कचुकी । महाराज ! ये ऋषि लोग आपके सम्मुख चले आते हैं । इससे आप में इनका स्नेह दिखाई देता है !

दुष्यन्त । (शकुन्तला की ओर देखकर) आहा ! यह नारी कौन है जिसका रूप वस्त्रों में से झलक रहा है । तपस्वियों के बीच में ऐसी दीप्यमान है मानों पीले पत्तों में नई कोपल ।

कंचुकी । महाराज, यह प्रत्यक्ष ही है कि रूप इस भाग्यवती का दर्शन योग्य है ।

दुष्यन्त । रहने दो परायी स्त्री देखनी उचित नहीं है ।

शकुन्तला । (आप ही आप अपने हृदय पर हाथ रख कर) हे हृदय तू क्यों धड़कता है । राजा के प्रथम मिलाप का ध्यान करके धीरज धर ।

पुरोहित । (आगे जाकर) महाराज का कल्याण हो । इन तपस्वियों का आदर सत्कार विधिपूर्वक हो चुका । अब वे अपने गुरु का संदेश लाये हैं सो सुन लीजिये ।

दुष्यन्त । (आदर से) सुनता हूँ कहने दो ।

दोनों भाई । (हाथ उठाकर) महाराज की जय रहे ।

दुष्यन्त । तुम सबको मैं भी प्रणाम करता हूँ ।

दोनों भाई । आपके कल्याण हो ।

दुष्यन्त । तुम्हारे तप में तो कुछ विघ्न नहीं पड़ा ?

शारङ्गरव ? जब आप तपस्वियों के रखवाले बने हो फिर विघ्न क्योंकर पड़ेगा, सूर्य के प्रकाश में अँधेरा कब रह सकता है ।

दुष्यन्त । (आप ही आप) जो मेरा ऐसा प्रताप है तो अब राजा शब्द मुझ में यथार्थ हुआ (प्रगट) कण्व मुनि प्रसन्न हैं ?

शारङ्गरव । महाराज कुशल तो तपस्वियों के सदा अधीन रहता है । गुरुजी ने आपकी अनामय पूछ कर यह कहा है ।

दुष्यन्त । क्या आज्ञा की है ?

शारङ्गरव । कि आपका इस कन्या से विवाह हुआ सो हमने प्रसन्नता से अंगीकार किया, क्योंकि आप तो सज्जन शिरोमणि हो और हमारी शकुन्तला भी साक्षात् सुशीलता का रूप है । अब कोई ब्रह्मा को यह दोष न देगा कि अनमिल जोड़ी मिलती है । तुम्हारे दोनों के समान गुण हैं । ऐसे दूलह दुलहिन की जोड़ी मिलाकर ब्रह्मा नाम धराई से बचा । अब इसको रनवास में लो और दोनों मिलकर शास्त्रानुसार व्यवहार करो ।

गौतमी । हे राजा, तुम बड़े मृदुल स्वभाव हो, इससे मेरे भी जी में कुछ कहने को आती है ।

दुष्यन्त । (मुसक्याकर) हाँ निस्सन्देह कहो ।

गौतमी । शकुन्तला अपने पिता के आने तक ठहरी और आपने भी अपने कुटुम्बियों से कुछ न पूछी, आप ही आप दोनों ने व्याह कर लिया, लो अब निधड़क बातचीत करो हम तो जाते हैं ।

शकुन्तला । (आप ही आप) देखूँ अब यह क्या कहते हैं ।

दुष्यन्त । (क्लेश में आकर आप ही आप) यह क्या वृत्तान्त है ?

शकुन्तला । (आप ही आप) हे दई ! राजा ने यह संदेशा ऐसे निरादर से क्यों सुना ?

शारङ्गरव । (आप ही आप) राजा ने अभी हौले से कहा है कि यह क्या वृत्तान्त है, सो ऐसा कहा क्यों ? (प्रगट) राजा तुम लोकाचार की सब बातों को जानते हो, स्त्री कैसी ही सुशीलता से रहे फिर भी

पति के होते पीहर^१ रहने में लोग चबाव^२ करते हैं, इसलिए अब हमारी इच्छा है कि चाहे इस पर तुम्हारा ध्यान हो, चाहे न हो वह तुम्हारे ही घर रहे तो भली है ।

दुष्यन्त । तुम क्या कहते हो, क्या मेरा इसका कभी विवाह हुआ ?
शकुन्तला । (उदास होकर आप ही आप) अरे मन ! जो तुम्हे डर था सोई आगे आया ।

शारङ्गरव । महाराज ! क्यों अपने किये को पछुताते हो ?

दुष्यन्त । तुम किस भरोसे पर इस निर्मल कहानी को सच्ची बताया चाहते हो ?

शारङ्गरव । (क्रोध से) जिनको ऐश्वर्य का मद होता है उनका चित्त स्थिर नहीं रहता ।

दुष्यन्त । यह वचन तुमने बहुत कठोर कहा ।

गौतमी । (शकुन्तला से) हे पुत्री अब बहुत लाजमन कर । ला; मैं तेरा घूँघट खाल दूँ जिससे भर्ता तुम्हे पहचान ले ।

(घूँघट खोल दिया)

दुष्यन्त । (शकुन्तला को देख आप ही आप) जब मैं यह विचारता हूँ कि इस सुन्दरी का पाणिग्रहण कभी आगे मैंने किया है या नहीं तो मेरी गति उस भौंरे की सी हो जाती है जो प्रातःकाल ओस की बूँद भरे कुन्द पर भ्रमता है, न छोड़ सके, न बैठ सके ।

कंचुकी । (हौले दुष्यन्त से) महाराज तो अपने धर्म और अधिकार में सावधान हैं । नहीं तो ऐसे स्त्रीरत्न को अपने रनवास में आने से कौन रोकता है ।

शारङ्गरव । महाराज चुप क्यों हो रहे हो ।

^१ पीहर (पितु + गृह, पी + घर, पीहर) = मायके । नैहर (नना + गृह = ननाघर = ननाहर = नाजहर = नैहर । (संस्कृत में “नना” लड़की को कहते हैं) ^२ चबाव = निन्दात्मक बातचीत ।

दुष्यन्त । हे तपस्वी, मैं बराबर सुध करता हूँ परन्तु स्मरण नहीं होता कि इस स्त्री से कब मेरा विवाह हुआ और यह बात क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध है कि पराई स्त्री को मैं अपने रनवास में लूँ ।

शकुन्तला । (आप ही आप) हे दैव ! जो मेरे सङ्ग व्याह ही होने में सन्देह है तो अब मेरी बहुत दिन की लगी आशा टूटी ।

शारङ्गरव । महाराज ऐसे बचन मत कहो । जिस ऋषि ने तुम्हारे अपराध को भूल अपनी कन्या ऐसे भेज दी है जैसे कोई चोर के पास अपना धन भेज दे उसका अपमान मत करो ।

शारद्वत । शारङ्गरव, तुम ठहरो । शकुन्तला अब तू आप ही कुछ पता बतलाकर अपने पति को सुध दिला; यह तुम्हें भूला जाता है ।

शकुन्तला । (आप ही आप) जो वह स्नेह ही न रहा तो अब सुधि दिलाये क्या होता है और जो इस जीव को दुख ही बढ़ा है तो कुछ बस नहीं है, परन्तु इससे दो बातें तो अवश्य करूँगी । (प्रगट) हे आर्य-पुत्र (फिर रुक गई) और जो इस शब्द में कुछ सन्देह है तो हे पुरुवंशी, यह तुमको उचित नहीं है कि आगे तपोवन में ऐसी प्रीति बढ़ाई और अब ये निठुर बचन कहते हो ।

दुष्यन्त । (कान पर हाथ धर कर) क्या तू मुझ निर्दोषी को कलङ्क लगाने के लिये कुछ छल करती है । देखो जो नदी मर्याद छोड़कर चलती है वह अपना ही तट खसकाकर गँदली होती है और तट के वृक्षों को गिरा कर अपनी शोभा बिगाड़ती है ।

शकुन्तला , जो तुम सुध भूलकर सत्य ही मुझे परनारी समझे हो, तो लो पते के लिये तुम्हारे ही हाथ की मुँदरी देती हूँ, जिसमें तुम्हारा नाम खुदा है !

दुष्यन्त । अच्छी बात बताई ।

शकुन्तला । (उँगली को देखकर) हाय हाय ! मुँदरी कहाँ गई (बड़ी व्याकुलता से गौतमी की ओर देखती हुई)

गौतमी । जब तैने चक्रावतार के निकट शची तीर्थ में जल का आचमन किया था तब मुँदरी गिर गयी होगी ।

दुष्यन्त । (मुसक्याकर) त्रियाचरित्र यही कहलाता है ।

शकुन्तला । यह विधि ने अपना बल दिखाया है, परन्तु अभी एक पता और भी दूँगी ।

दुष्यन्त । सो भी कहो ।

शकुन्तला । उस दिन की सुध है या नहीं जब आपने माधवी कुञ्ज में कमल के पत्ते से जल अपने हाथ में लिया ।

दुष्यन्त । तब क्या हुआ ?

शकुन्तला । उसी दिन एक मृगछौना जिसको मैंने पुत्र की भाँति पाला था आ गया । आपने बड़े प्यार से कहा कि आ बच्चे पहले तू ही पानी पीले । उसने तुम्हें विदेशी जान तुम्हारे हाथ से जल न पिया, मेरे हाथ से पी लिया । तब तुमने हँसकर कहा कि सब कोई अपने ही सँघाती को पत्याता है, तुम दोनों एक ही बन के बासी हो और एक से मनोहर हो ।

दुष्यन्त । चतुर स्त्रियों के मधुर वचनों ही से कामी मनुष्यों के मन ढिगते हैं ।

गौतमी । बस राजा, ऐसे कठोर वचन कहने योग्य नहीं हैं । यह कन्या तपोवन में पली है । यह दुखिया छल क्या जाने ।

दुष्यन्त । हे तपस्विनी, बिना सिखाये भी स्त्री जाति की चतुराई पुरुषों से अधिक होती है । सो यह बात केवल मनुष्यों ही में नहीं है सब जीव जन्तु में है, और कदाचित् स्त्री अच्छी सिखाई जायँ तो न जाने ये क्या करें । देखो कोयल अपने अंडे बच्चे दूसरे पक्षियों से, जिनसे उसका कुछ नहीं सम्बन्ध है, पलवाती है ।

शकुन्तला । (क्रोध करके) रे निर्लज, तू अपना सा कुटिल हृदय सब को जानता है । तुझसा पाखण्डी और कपटी राजा न कोई पृथ्वी पे

हुआ, न है, न आगे होगा। तैने धर्म के भेष में कपट ऐसे दुराया है मानो गहरे कुएँ का मुख घास फूस से ढँका है।

दुष्यन्त । (आप ही आप) इसका कोप मेरे मन में सन्देह उपजाता है कि इसका कहना कहीं सच्चा ही न हो। रोस से इसकी आँखें लाल हो गयी हैं, और जब कठोर वचन बोलती है तो मुख से शब्द टूटते हुए निकलते हैं। लाल होठ ऐसे काँपते हैं मानों तुषार का मारा भिम्बाफल और भौंहें यद्यपि सीधी हैं परन्तु रोस में टेढ़ी हो गयी हैं। जब अपने-साधारण यह रूप से मुझे न छल सकी तब रिस का मिस करके भृकुटी चढ़ायी है। (प्रगट) हे बाला, दुष्यन्त के शील स्वभाव को सब जानते हैं, परन्तु तेरा प्रयोजन क्या है सो कह।

शकुन्तला । (व्याजस्तुति की भाँति) हाँ सत्य है, तुम राजा लोग ही तो सब बात के प्रमाण होते हो; और तुमही यथार्थ धर्म और लोकरीति जानते हो, स्त्री दुखिया कैसी ही लाजवती और सुलक्षणी हो तो भी धर्म नहीं जानती है, न सच बोलना जानती है। अच्छी घड़ी में मन भावते को ढूँढ़ने आयी और अच्छे मूहूर्त्त के पुरुवंशी राजा से ब्याह हुआ। तेरे मीठे वचनों ने मेरे विश्वास को जीत लिया था, परन्तु हृदय में छिपा हुआ वह अस्त्र निकला जिससे मेरे कलेजे को घाव लगा। (घूँघट करके रोने लगी) ।

शारङ्गरव । इस राजा की चपलता देखकर मेरा मन लजाता है अब से जो कोई गुप्त सम्बन्ध करे उसे चाहिये कि पहले परीक्षा कर ले, क्योंकि जो प्रीति बिना स्वभाव पहचाने जुड़ जाती है थोड़े ही काल में बँर हो जाती है।

दुष्यन्त । क्या तुम इसकी चिकनी चुपड़ी बातों की प्रतीत करके मुझे घोर पाप में डाला चाहते हो।

शारङ्गरव । (अवज्ञा करके) उत्तर था सो सुन लिया। यहाँ इस कन्या की, कि जिसने जन्म भर छल का नाम भी नहीं सीखा

है, कौन प्रतीत करता है। यहाँ तो वे ही सच्चे हैं जो दूसरे को दोष लगाना पड़े हैं।

दुष्यन्त । तुम बड़े सत्यवादी हो। ठीक कहते हो। मैं ऐसा ही हूँ परन्तु यह कहो इस स्त्री को दोष लगाने से मुझे क्या मिलेगा ?

शारङ्गरव । भारी विपत्ति ।

दुष्यन्त । नहीं, पुरुवंशियों के भाग्य में विपत्ति कभी नहीं लिखी।

शारङ्गरव । हे शारङ्गरव, इस वादसे क्या अर्थ निकलेगा ? हम तो गुरु का संदेशा लाए थे सो भुगता चुके। अब चलो और हे राजा, यह शकुन्तला तेरी विवाहिता स्त्री है, चाहे इसे रख, चाहे छोड़। स्त्री के ऊपर पति का सब अधिकार है। आओ गौतमी चलो।

(दोनों मित्र और गौतमी चले)

शकुन्तला । हाय ! यह तो छलिया निकला, अब क्या तुम मुझे छोड़ जाओगे। (उनके पीछे चल खड़ी हुई)

गौतमी । (पीछे फिर कर) बेटा शारङ्गरव शकुन्तला तो विलाप करती यह पीछे पीछे आती है। दुखियाको निर्मोही पति ने छोड़ दिया। अब यह क्या करे।

शारङ्गरव । (क्रोध करके शकुन्तला से) हे अभागिनी, तू पति के अवगुण देखकर क्या स्वतन्त्र हुआ चाहती है ?

(शकुन्तला ठहर गयी और काँपने लगी)

शारङ्गरव । हे भाग्यवती सुन ले। जो तू ऐसी ही है जैसा तेरा पति कहता है, तो पिता के घर रहने का तेरा अधिकार न रहा, और जो तू अपने मतसे सच्ची है, तो पति के घरमें दासी होकर भी रहना अच्छा है अब तू यहीं ठहर। हम आश्रमको जाते हैं।

दुष्यन्त । हे तपस्वियो क्यों इसे भूठी आशा देते हो। देखो चन्द्रमा कुमुदिनी ही को प्रसन्न करता है और सूर्य कमल ही को खिलाता है, ऐसे ही जितेन्द्रिय पुरुष परायी स्त्री से सदा बचे रहते हैं।

शारद्वत । सत्य है । परन्तु तू ऐसा पुरुष है कि अधर्म और अकीर्ति से डरता है, तो भी अपनी विवाहिता को छोड़ते नहीं लजाता और मिस यह बनाया है कि प्रजा कि उपकारके कामों में अपने वचन को भूल गया है ।

दुष्यन्त । (अपने पुरोहित से) न जानूँ मैं ही भूल गया हूँ या यही झूठ कहती है । हे पुरोहित, तुम कहो दोनों पापों में कौन सा बड़ा ? अपनी विवाहिता स्त्री को त्यागना अथवा परायी को ग्रहण करना ।

पुरोहित । (बहुत सोचकर) महाराज, इन दोनों के बीच में एक तीसरा उपाय और है, सो करना उचित है अर्थात् यह कि जबतक इसके पुत्रका जन्म हो तब तक इसे मेरे घर में निवास करने दो ।

दुष्यन्त । यह क्यों ?

पुरोहित । अच्छे अच्छे ज्योतिषियों ने आगे ही कह रक्खा है कि आपके चक्रवर्ती पुत्र होगा । सो कदाचित् इस मुनिकन्याके ऐसा ही पुत्र जन्मे और उसके लक्षण चक्रवर्ती के से पाये जायँ तो आप इसको आदरपूर्वक रनवासमें लाना, नहीं तो यह अपने पिता के आश्रम को जायगी ।

दुष्यन्त । अच्छा जो तुम्हारी इच्छा हो ।

पुरोहित । (शकुन्तला से) आ पुत्री ! मेरे पीछे चली आ ।

शकुन्तला । हे घरती ! तू मुझे ठौर दे, मैं समा जाऊँ ।

(रोती हुई पुरोहित के पीछे पीछे गयी और तपस्वी और गौतमी दूसरी ओर गयी । शकुन्तलाको जाती देखकर राजा खड़ा सोचने लगा, परन्तु शापके बस फिर भी सुध न आयी)

(नेपथ्यमें) आहा ! बड़े आश्चर्य की बात हुई ।

दुष्यन्त । (कान लगाकर) क्या हुआ ?

(पुरोहित फिर आ गया)

पुरोहित । महाराज ! बड़ा अचम्भा हुआ । जब यहाँसे निकल

कर कणवके चले गये और शकुन्तला अपने भाग्य की निन्दा करती हुई बाँह उठाकर रोने लगी—

दुष्यन्त । तब क्या हुआ ?

पुरोहित । तब अप्सरातीर्थ के निकट स्त्री के रूप में कुछ बिजली सी आयी और शकुन्तला को उठा छाती से लगाकर ले गयी ।

(सब आश्चर्य करने लगे)

दुष्यन्त । मुझे पहले ही भास गयी थी कि इसमें कुछ छल है, सोई हुआ । अब इस बात में तर्क करना निष्फल है । तुम विश्राम करो ।

पुरोहित । महाराज की जय रहे ।

(बाहर गया)

दुष्यन्त । द्वारपालिनी, इस समय मेरा चित्त बहुत व्याकुल हो रहा है, आ तू मुझे शयनस्थान की गैल बता ।

द्वारपालिनी । महाराज ! इस मार्ग आइये ।

दुष्यन्त । (चलता हुआ आप ही आप) मैं बहुतेरा सुध करता हूँ परन्तु ध्यान में नहीं आता कि मुनिकन्या से कब मेरा विवाह हुआ और हृदय उकताकर ऐसा हो गया है कि इस स्त्री के बचनों की प्रतीति करना चाहता है ।



द-बा० तोताराम, बी० ए०

बाबू तोताराम का जन्म सं० १६०४ वि० में हुआ । कुछ दिन सरकारी नौकरी करके यह वकालत करने लगे । अलीगढ़ के बड़े नामी वकीलों में थे । लाखों रुपये की आमदनी थी । हिन्दी के परम हितैषी और भक्त थे । केटोकृतान्त नाटक लिखा, वात्सीकीय रामायण का दोहा चौपाइयों में अनुवाद किया जो अपूर्ण रह गया, परन्तु अब वह अपूर्ण अंश भी छप गया है । “भारतबन्धु” नामक साप्ताहिक पत्र के यही-जन्म दाता थे । १६५६ में शरीरपात हुआ ।

यह भी शुद्ध हिन्दी के ही पक्षपाती थे । गद्य खड़ी बोली में और पद्य ब्रजभाषा में लिखते थे । अलीगढ़ की साधारण भाषा ब्रजभाषा ही है । शायद यही बात है कि खड़ी बोली में ब्रजभाषा के छींटे आ ही जाते हैं । जैसे टलती के स्थान में “टरती” आदि का लिखना । “दृष्टि पड़ता है” आदि सरीखे प्रयोग लाने से इनकी शैली को पण्डिताऊ शैली से कुछ मिलती जुलती कहें तो अनुचित न होगा ।

कीर्तिकेतु नाटक

विघनहरन गनराय मङ्गलमूरति सुख सदन ।

बन्दौ सीस नवाय कृपासिन्धु सिन्धुर बदन ॥१॥

कारण जो जगको जगबन्दन जाकी कृपा बिनसैं दुख भारे ।

जीव चराचर जे जग के रचकै नभ में सति सुर सवारे ॥

जो जग पूरि रह्यो सब में जिन राम सदा जन के पन पारे ॥

सोई अनन्त अपार दया करि आज करो शुभ काज हमारे ॥

(सूत्रधार आता है)

सूत्रधार—(नेपथ्य की ओर देखकर) हे प्राण प्यारी ! तुम आज अभी बाहर क्यों नहीं आती ?

नटी—(बाहर आकर) हे प्राणनाथ ! आपके संमुख खड़ी हूँ क्या आज्ञा होती है ?

सूत्र०—हे सुलोचनि ! आज ऐसा उपाय रचो जिससे यह चतुर गुणी जनों की सभा आनन्द पावे ।

नटी०—जो महाराज की आज्ञा—पति की आज्ञा पालन करना यही नारी का परम धर्म भी है ।

सूत्र०—धर्म का नाम तुम्हारे मुख से इस समय अच्छा निकला, चलो एक ऐसी लीला करे जिससे धर्म की चर्चा सुन सभा प्रसन्न हो जावे ।

नटी०—बहुत उत्तम बात आपने बिचारी । इस लीला का सब साज मैं सजा भी चुकी हूँ ।

(नेपथ्य में घोर अरुणोदय हुआ)

दोनों—(नेपथ्य की ओर कान लगाकर) अरे यहाँ से चलें, यदि घोर अरुणोदय हुआ तो अब कोई हमें दिन में धर्म की चरचा न फैलाने देगा—अब जो हम अपने हठ से धर्म का नाम लेंगे तो इस असार संसार में दुःख पावेंगे—चलो । (दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना

प्रथम अङ्क

पहिला गर्भाङ्क

(मुख मलीन किये मकरध्वज और प्रेमभाव आते हैं)

प्रेम०—(आकाश की ओर देखकर) घोर अरुणोदय हुआ ।

पूरब दिशि प्रगटे अरुन भयो भयानक भोर ।

पुरी रमावति की दशा लखि कांपत मन मोर ॥

हमारे जनक और जन्मभूमि रमावती नगरी के अभाग्य का यह प्रथम दिन है—भला इस आज के दिन को कौन भूल जायगा ? हमारे पिता के मुरलोकावस पाने पर कुलकलह के पाप का घट पूर्ण हो

जायगा, फिर यह वैरी युद्ध अपने आप शान्त हो जायगा— देखो ।

सठ सिसुमार कुठार कुल दोनों देश उजारि ।

बीर बिहीन मही करी सुभट समूहन मारि ॥

हे ईश्वर ! यदि यह दुष्ट ऐसी ही युद्ध^१ करने पर कमर बाँधे रहा तो नवीन लड़ाई को और पाप बीज बोने को बीज कहाँ से आवेंगे । हे भगवान् ! मनुष्य तृष्णा के फन्दे में कैसे कैसे घोर पाप करते हैं ।

मकरध्वज—छल अवगुन सिसुमार के तोकों सूक्त बीर ।

नाम सुनत ता मूढ़को मो मन धरत न धीर ॥

जब जब उसका नाम सुनता हूँ, फालगुनीपुरी दृष्टि से नहीं टरती । मैं उस दुखदाई दुष्ट को रुधिर पूरित मृतक रमावती निवासियों से भरी रनभूमि में भ्रमण करते देखता हूँ, और उसके छोड़े के सुम महाजनों के रक्त से रंजित दृष्टि पड़ते हैं । हे प्यारे प्रेमभवन ! न जाने—

कहाँ बज्र कहँ बीजरी गये सकल अब खोय ॥

कुलकंटक सिसुमार के माथे परत न कोय ॥

प्रेम०—हे मकरध्वज सत्य करि मानो, उस दुष्ट की धर्महीन प्रभुता है । ऐसी प्रभुता की अभिलाषा भी अनेक भय से भरी हुई है । हमारे पिता के धर्म पर ध्यान दो यद्यपि—

विपत्ति घोर घन कोपि करि लोप्यो कीरति केत ।

तदपि धर्म के तेज सों सङ्कट सोभा देत ॥

देखो यह धर्म ही का प्रभाव है कि ऐसी विपत्ति में वह तेजपुञ्ज दृष्टि पड़ता है । अपने अभाग्य वश कुछ उपाय काम नहीं आता । पुरी रमावती की रक्षा के लिए अपना यही धर्म समझ प्राण दिये मरता

^१युद्ध पुलिंग है । यहाँ शायद लड़ाई के अर्थ में ही स्त्रीलिंग लिखा गया ।

है। उसने निरपराधी को कभी दण्ड नहीं दिया, केवल दुष्ट अधर्मों
उसके हाथ से दंड पाते रहे।

मक०—यह कौन नहीं जानता, परन्तु इस नीच संसार के
आगे कीर्तिकेतु बेचारे की क्या चलती है। जो पराधीन होने ही से
प्रसन्न रहता है और सिसुमार की जा गिरने का जिसे चाव है—हमारा
पिता अत्रिपुर में बैठा हुआ वृथा रमावती नगरी की ये नाममात्र
प्रतिष्ठा बनाये है। नवपुर की निबल सेना और एक रीति १थोधी
सभा जो निष्फल युद्धों से शेष रह गयी है वही उसके संग है—हे
ईश्वर।

निशि दिन सोचत जात, देख धर्मकर अशुभ फल।

थर थर काँपत गात, पिता पन्थ निज पग धरत ॥

प्रेम०—हमारे पिता जी हमसे बार बार कहते हैं उसे स्मरण
करो कि—

जानी परति न दैवगति सूफे भेद न गूढ़।

ताके निष्फल खोजमें वृथा फिरै मन मूढ़ ॥

न तो हमको यह दृष्टि आता है कि किस युक्ति से यह जाल
फैलाया गया है, अथवा कहाँ इस नियत अन्धेर का अन्त है।

मक०—(आह भरकर)

प्रेम भवन प्यारे अनुज यह सब सुख की बात।

जो दुख दाहत मो हियो तोहि न सालै तात ॥

दयाहीन जड़सों लगन लागी मेरे मित्त।

निडुर मीत की प्रीतियों चैन न पावत चित्त ॥

प्रेम०—(अपने आप) तू नहीं जानता कि प्रिय बन्धु भी उसी
प्रेम फन्दे में फँसा हुआ है, परन्तु यह भेद मैं गुप्त रखूँ तो अच्छा,
क्यों कि मैं इसके स्वभाव को जानता हूँ (प्रगट हो)—

बन्धुबीर रनधीर समय की ओर निहारो ।
 सावधान मन राखि पिता कीरति उरधारो ॥
 हूँ सचेत धरि धीर धर्म को आज सम्हारो ।
 करि निज बल विस्तार और कछु मन न विचारो ॥
 अब अगम प्रेम की बानि तजि निज बस राखो चपल मन ।
 सुनि यह कीरति यशकेतसुत सदा रहै भुव गुनसदन ॥

मक०—हे प्रिय भवन ! यह तेरी नीति मेरे मन नहीं भाती, दुख दूर करने का उपाय विचारने के ठौर तू मेरी विकलता की निन्दा करता है । हे प्रिय बन्धु,

कहौ समर धँसि शत्रु को गवं नचवाऊँ ।
 कालबली के कोप मोरि मुख भागि न आऊँ ॥
 शूरवीरता सफल समय पर करि दिखराऊँ ।
 रन में दैकै पीठि तात पितुको न लजाऊँ ॥
 प्रिये, पै न कछु या प्रेम को भेद भाव जान्यो परत ।
 नित सुखदुख सोच विचार में आँख ओट पलक न ढरत ॥

अरे यह दूसरा प्राण है, वह बैरिन प्रीति हृदय में उपजती है तो अङ्ग के सब अवयवों में होकर इसका अंकुर पार निकल जाता है, नस नस में खटकती है । देखो मेरे यहां सालती है । हाय मेरा धीरज छूटा जाता है ।

प्रेम०—नवपुर के राजकुमार ! जगजीवन की ओर देखो ।

कैसे उचित उपाय सों राखतु अपनी बात ।
 पिता सिखवान सिर धरतु छाँड़ि मूढ़ मति तात ॥

नहीं तो देखो—

जगजीवन जुवराज को नेह मधुमती ओर ।
 जानि परत निरखत अनुज चपल चारु चखकोर ॥

परन्तु फिर भी—

गूढ प्रेम ससि दुसह दुख राख्यो हिये दुराय ।

निज अपकीरति को डरै नवपुर भूपतिराय ॥

हे प्रिय बन्धु ! क्या एक विदेशी कीर्तिकेतु के पुत्र से इस विषय में श्रेष्ठ हो जाय, और संसार पर यह प्रकट कर दे कि रमावती नगरी के लोग इस प्रकार के धर्म को नहीं जानते ।

मक०—हे प्रियभवन ! बस करो । तुम्हारे बचन बानों की^१ अनी मेरे चुभती है, भला मुझे तो बताओ—

कौन धर्म आचार, जगजीवन मम बन्धु प्रिय ।

करि जस लख्यो अपार, जो न किये जलजातधुज ॥

प्रेम०—बन्धु मकरध्वज ! मैं तुम्हारे उद्गार को भली भाँति पहले ही से जानता था, तुझसे कुछ बात कहने की देर नहीं होती कि तुम मारे क्रोध के काँप उठते हो ।

मक०—अरे भाई के दुख में भाई ही को दया करनी पड़ती है ।

प्रेम०—ईश्वर जानता है, जितना मैं तुम्हारा तरस खाता हूँ । बातचीत करने में भी मेरी आँखों को देखो, क्या वे आँसू रो रोकर नहीं बहाती ?

सत्य तो यह है—

कहा कहूँ कहता बने हृदौ न दीखै तोहिं ।

परती दीठि दरार हिय दोष न देतो मोहि ॥

मक०—तब तू मित्र की भाँति दुखित हो कृपापूर्वक दुख बाँटने के ठौर क्यों मेरी निन्दा करता है ?

प्रेम०—हे मकरध्वज !

जौ जानूँ तो जीय की वेदन को उपचार ।

प्राण देत प्रिय बन्धुहित नेक न लाऊँ बार ॥

^१भाले का या तीर का सिरा जो खोहे का होता था ।

मक०—हे श्रेष्ठबन्धु ! हे उत्तम मित्र ! इस दीन व्याकुल चित्त के अपराध को क्षमा करना, क्षण भर में इसे क्रोध आता है और तुरन्त शीतल हो जाता है। चित्त क्या है, एक क्रोध का खिलौना है, परन्तु शकुनि आता है। यहाँ से चलूँ वह मेरी इस विह्वलता को कहीं न जान जावे।

(बाहर गया)

द्वितीय गर्भाङ्क

(शकुनि आया)

शकु०—(अपने आप) यदि किसी प्रयोजन के साधने को हम लोग एक हुए हैं, तो उसको तुरन्त ही कर लेना भी योग्य है—प्रेम भवन न जाने यहाँ क्या कर रहा है, मुझे वह उदासीन पुरुष अच्छा नहीं लगता। चलो मैं भी अपने हृदय की बात गुप्त रखूँ और कुछ का कुछ कहने लगूँ। (प्रकट) नमस्कार प्रेमभवन ! आओ एक बार अङ्क भर मिल लें, आओ एक बार और भी मिल लें, जब तक हम तुम दोनों स्वतन्त्र हैं, क्योंकि—

को जाने गति काल को करै भरोसो कौन।

परबस है मिलनो लिख्यो अब आगे दुख भौन ॥

मेरी जान में ऐसा आता है कि,

यही दिवस दिन कर यही यही भयङ्कर भोर।

पुरी रमावती पुन्य को निकस्यो पूरब छोर ॥

प्रेम०—मेरे पिता ने आज इस स्थान में एक छोटी सी सभा इकट्ठा की है; इसमें वे सब महाशय विद्यमान हैं जो फाल्गुनी नगरी में घोर युद्ध से शेष बचे थे। हमारे पिता की इस सभा से यह अनुमति लेने का विचार है कि उस प्रबल शत्रु सिसुमार का, जो रमावती पुरी को रक्त ग्राम देवताओं समेत नष्ट करता चला आता है, सामना करना उचित है या निदान सब उसको छोड़कर बैठ रहें।

शकु०—कीर्तिकेतु के इस उदार स्वभाव की कहाँ तक प्रशंसा की जाय ? सत्य तो यों है कि—

पुरी रमावति को विभव सुजन समाज समेत ।

कीरतिकेतु प्रताप सों सब विधि सोभा देत ॥

धर्मशील यशकेत की करें सबल जन कानि ।

सबल सूर सिसुमारहू रह्यो हृदय भय मानि ॥

हे प्यारे प्रेमभवन ! यदि यह तेरा जनकश्रेष्ठ मेरा भी एक प्रकार का पिता होता, और तुम्हारी प्रिय मधुमती भगिनी तेरे मित्र पर अनुराग-दृष्टि करती तो वास्तव में मेरे भाग्य खुल जाते ।

प्रेम०—हाय शकुनि ! क्या तुम्हें मधुमती के प्रेम की बातें सूझती हैं ? आश्चर्य की बात है कि—

ऐसे हूँ अवसर पै सखा कहसि प्रीति की बात ।

विपति मधुमती तात की सोचि न नेकु लजात ॥

अरे इससे तो मुखमलीन कांपती हुई विद्यादेवी के मन्दिर को कुमारी कन्याओं से; उस समय जब कि उनकी जीवन मूरि पवित्र पावक बुझाने को हो, अपना यह प्रेम अनुराग प्रकट करता तो अच्छा था ।

शकु०—हे प्रिय क्षमा करो, मेरा इसमें कुछ दोष नहीं है, तुम्हारे कुल के विचित्र चरित्र देख मेरा मन हाथ में नहीं रहता । प्रेमभवन ! मेरी इस दशा पर तुम्हको ध्यान देना उचित है क्योंकि—

यश कीरति तब जनक की रही सकल भुव छाय ।

ता कारन गुन दोष तब छिपत न लाख छिपाय ॥

इस हेतु ऐसा करो जिससे तुम्हारे कुल की लाज रहे ।

प्रेम०—नहीं, तुम ठीक कहते हो, इस समय पर हमें हाथ पर हाथ धरकर न बैठ रहना चाहिये । लो अभी जाता हूँ और जब तक सभासद युद्ध का परिणाम सोचें तबतक,

जाय के सूर समूह के बीच सबै इढ़ धीरज आज बँधाऊँ ।

आज स्वदेश के पाद गहाय के यों धनु प्राण को मोह छुड़ाऊँ ॥

बीर बखानि कथा यश की हठि सोवत ते रस बीर जगाऊँ ।
 या बिधि साजिकै सेन सखा पग रोपकै शत्रु सों रार मचाऊँ ॥
 किसी काम का सिद्ध कर लेना मनुष्य के अधीन नहीं है; परन्तु हे
 शकुनि ! जितना हम परिश्रम करेंगे उतना हम उसके भागी होंगे ।

(जाता है)

शकु०—(अकेला) धिक्कार है इस नीच बालक पर, देखा कैसे
 अपने पिता का अनुकरण करता है । अभिमानी नीतिनिपुण है, परन्तु
 बड़े अचम्भे की बात है,

कवन हेत आयो नहीं अब लागि बीर सुखेन ।

भली भाँति जाने चतुर सब बिधि के सुखदेन ॥

न हो तो मैं ही उसको सुनाऊँ और बार उससे निवेदन करूँ ।
 कीर्तिकेतु ने मेरे सङ्ग खोटी की ।

दई न निज तनया निठुर मैं विनयो बहु बार ।

तापर ताकी हार सों कहा मोर उपकार ॥

उसके सङ्ग में रहकर क्या करूँ, उसकी पराजित और असहाय
 अवस्था से मेरा क्या भला हो सकता है ? सिसुमार की कृपा ही ठीक
 है, जो उसके मित्रों पर प्रतिष्ठा रूप जल सा बरसाती है वही मुझको
 रमावती नगर की मुख्य प्रतिष्ठा देगी । यदि मैं उसका संग छोड़ दूँ तो
 उसकी (पकड़ी हुई) पुत्री मधुमती तो, मुझे पारितोषिक ही में मिल
 जायगी, परन्तु सुखेन आता है ।

६-बाबू हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु)

लाई कलाइय के सहायक इतिहास प्रसिद्ध जगतसेठ और अमीचन्द्र दो धनकुबेर थे । जगतसेठ के वंशज राजा शिवप्रसाद की चर्चा हो चुकी है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सेठ अमीचन्द्र के वंशज थे । भारतेन्दु के पिता स्वयं एक प्रतिभाशाली कवि हो गये हैं । जन्म संवत् ११०७ में हुआ । काशी के धनाढ्य रईसों में थे, परन्तु काव्यरसिक और साहित्यसेवी इतने ऊँचे दर्जे के थे कि अपना सारा धन साहित्यसेवा ही में उड़ा दिया । मृत्यु केवल ३४ वर्ष की अवस्था में संवत् ११४१ में हुई । इस प्रतिभाशाली कवि ने सात वर्ष की अवस्थामें ही कवित्व शक्ति का परिचय दिया था पर १६ वर्ष की अवस्था से इनकी कविता प्रौढ़तापूर्ण होने लगी और केवल १८ वर्ष की साहित्य सेवा में इन्होंने ११ नाटक लिखे, कई सामयिक पत्र निकाले, सम्पादन किये, गद्य के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे । पद्यरचना इनकी जैसी मधुर मनोहर और भावपूर्ण होती थी वह स्फुट संप्रहों से एवं नाटक ग्रन्थों से प्रकट है । भारतेन्दु जैसे अगाध प्रेम की मूर्ति थे वैसे ही देशभक्ति भी उनमें कूट कूट कर भरी हुई थी । यद्यपि इनसे पहले हिन्दी में कई नाटक लिखे जा चुके थे तथापि साहित्यिक दृष्टि से उन्हें नाटक कहने में अनेक आलोचकों को सङ्कोच होगा । भारतेन्दु को हिन्दी नाटक एवं गद्य का जन्मदाता कहें तो अनुचित न होगा । इनका गद्य रसीला होता था । राजा शिवप्रसाद की तरह विदेशी शब्दों-को हिन्दी में ठूँसने के विरोधी थे, साथ ही इनकी हिन्दी को पंडिताऊपन की लांछना से मुक्त भी नहीं कह सकते ।

एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न

आज रात्रि को पर्यंक पर जाते ही अचानक आँख लग गयी ।

सोते में सोचता क्या हूँ कि इस चलायमान शरीर का कुछ ठीक नहीं। इस संसार में नाम स्थिर रहने की कोई युक्ति निकल आवे तो अच्छा है, क्योंकि यहाँ की रीति देख मुझे पूरा विश्वास होता है कि इस चपल जीवन का क्षणभर का भरोसा नहीं। ऐसा कहा भी है—

स्वॉस स्वॉस पर हरि भजो वृथा स्वॉस मति खोय ।

ना जाने या स्वॉस को आवन होय न होय ॥

देखो समय सागर में एक दिन सब संसार अवश्य मग्न हो जायगा। कालवस शशि-सूर्य भी नष्ट हो जायँगे। आकाश में तारे भी कुछ काल पीछे दृष्टि न आवेंगे। केवल कीर्ति कमल संसार सरवर में रहो वा न रहो, और सब तो एक दिन तप्त तवे की बूँद हुए बैठे हैं। इस हेतु बहुत काल तक सोच समझ प्रथम यह विचार किया कि कोई देवालय बनाकर छोड़ जाऊँ, परन्तु थोड़ी ही देर में समझ आ गया कि इन दिनों की सभ्यता के अनुसार इससे बड़ी कोई मूर्खता नहीं, और यह तो मुझे भली भाँति मालूम है कि यही अंग्रेजी शिक्षा रही तो मन्दिर की ओर मुख फेरकर भी कोई न देखेगा। इस कारण इस विचार का परित्याग करना पड़ा। फिर पड़े पड़े पुस्तक रचने की सूझी। परन्तु इस विचार में बड़े कांटे निकले। क्यों कि बनाने की देर न होगी कि कीट “क्रिटिक”^१ काटकर आधी से अधिक निगल जायँगे। यश के स्थान शुद्ध अपयश प्राप्त होगा। जब देखा कि अब टूटे फुटे विचार से काम न चलेगा, तब लाड़िली नींद को दो रात पड़ोसियों के घर भेज आंख बन्दकर शम्भु की सीसमाधि लगा गया, यहाँ तक कि इकसठ वा इक्यावन वर्ष उसी ध्यान में बीत गये। अन्त को एक मित्र के बल से अति उत्तम बात की पूंछ हाथ में पड़ गयी। स्वप्न में होते ही पाठशाला बनाने का विचार दृढ़ किया। परन्तु जब थैली में हाथ डाला, तो केवल ग्यारह गौड़ी ही मुहरें निकलीं। आप जानते हैं इतने में मेरी अपूर्व

^१ Critic = आलोचक

पाठशाला का एक कोना भी नहीं बन सकता था । निदान अपने इष्टमित्रों की भी सहायता लेनी पड़ी । ईश्वर को कोटि धन्यवाद देता हूँ जिसने हमारी ऐसी सुनी । यदि ईंटों के ठौर मुहर चुनवा लेते तब भी तो दस पाँच रेल रुपये और खर्च पड़ते । होते होते सब हरिकृपा से बनकर ठीक हुआ इसमें जितना समस्त व्यय हुआ वह तो मुझे स्मरण नहीं है, परन्तु इतना अपने मुन्शी से मैंने सुना था कि एक का अंक और तीन सौ सत्तासी शून्य अकेले पानी में पड़े थे । बनने को तो एक क्षण में सब बन गया था, परन्तु उसके काम जोड़ने में पूरे पैंतीस वर्ष लगे । जब हमारी अपूर्व पाठशाला बनकर ठीक हुई, उसी दिन हमने हिमालय की कन्दराओं में से खोज कर अनेक उद्दण्ड^१ पंडित बुलवाये, जिनकी संख्या पौन दशमलव से अधिक नहीं है । इस पाठशाला में अनगणित अध्यापक नियत किये गये, परन्तु मुख्य केवल ये हैं । पंडित मुग्धमणि^२ शास्त्री—तर्कवाचस्पति^३—प्रथम अध्यापक । पाखंडप्रिय धर्माधिकारी अध्यापक धर्मशास्त्र । प्राणान्तकप्रसाद^४ वैद्यराज—अध्यापक वैद्यक शास्त्र । लुप्तलोचन ज्योतिषाभरण^५—अध्यापक ज्योतिषशास्त्र । शील-दावानल^६ नीतिदर्पण—अध्यापक नीतिशास्त्र और आत्मविद्या ।

इस पूर्वोक्त पंडितों के आ जानेपर अर्धरात्रि गये पाठशाला खोलने बैठे । उस समय सब इष्टमित्रों के सम्मुख उस परमेश्वर को कोटि धन्यवाद दिया, जो संसार को बनाकर क्षणभर में नष्ट कर देता है, और

^१अवखड्ग, निडर । ^२मुखों के सरदार । ^३बहुस करने में बृहस्पति के समान । ^४जिनसे मृत्यु प्रसन्न हो, जिनकी चिकित्सा से रोगी मर जाया करें । ^५अन्धे और ज्योतिष के नाम को आभूषण समान रखनेवाले । अन्धे ज्योतिषी । ^६शीलको दावानल की तरह जलाकर भस्म कर देनेवाले और जैसे दपण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और झूठ प्रतिबिम्ब ही दीखता है उसी तरह जिनके हृदय पर नीतिका कोई प्रभाव नहीं पड़ता केवल उसका रूप प्रतिफलित दीखता है ।

जिसने विद्या शील बलके सिवाय मान, मूर्खता, परद्रोह, परनिन्दा आदि परमगुणोंसे इस संसार को विभूषित किया है। हम कोटि धन्यवादपूर्वक आज इस सभा के सम्मुख अपने स्वार्थरतचित्त की प्रशंसा करते हैं जिसके प्रभावसे ऐसे उत्तम विद्यालय की नींव पड़ी। उस ईश्वर को ही अङ्गीकार था कि हमारा इस पृथ्वी पर कुछ नाम रहे, नहीं तो जब द्रव्य की खोज में समुद्र में डूबते डूबते बचे थे तब कौन जानता था कि हमारी कपोल कल्पना सत्य हो जायगी। परन्तु ईश्वरके अनुग्रह से हमारे सब संकट दूर हुए और अन्त समय हमारी अभिलाषा पूर्ण हुई। हम अपने इष्टमित्रों की सहायता को कभी न भूलेंगे कि जिनकी कृपासे इतना द्रव्य हाथ आया कि पाठशाला का सब खर्च चला गया, और दस पाँच पीढ़ीतक हमारी सन्तान के लिए बच रहा। हमारे पुत्र परिवार के लोग चैन से हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें। हे सज्जनों, यह तुम्हारी कृपा का विस्तार है कि तन मन से आप इस धर्म कार्य में प्रवृत्त हुए, नहीं मैं दो हाथ पैरवाला बेचारा मनुष्य आपके आगे कौन कीड़ा था जो ऐसे दुष्कर कर्म को कर लेता, यहाँ तो घर की केवल मूँछे-दी-मूँछे थीं। कुछ मेह कुछ गंगाजल, काम आपकी कृपा से भली भाँति हो गया। मैं आज के दिन को नित्यता का प्रथम दिन मानता हूँ, जो औरों को अनेक साधन से भी मिलना दुर्लभ है। धन्य है उस परमात्मा को जिनसे आज हमारे यश के डहडहे अंकुर फिर हरे किये। हे सज्जन शुभचिन्तको! संसार में पाठशाला अनेक हुई होगी। परन्तु हरिकृपा से जो आप लोगों की सकलपूर्ण कामधेनु यह पाठशाला है वैसी अचरज नहीं कि आपने इस जन्म में न देखी सुनी हो। होनहार बलवान है; नहीं कलिकाल में ऐसी पाठशाला का बनाना कठिन था। देखिये यह हम लोगों के भाग्य का उदय है कि ये महामुनि मुग्धमणि शास्त्री बिना प्रयास हाथ लग गये, जिनको सतयुग की आदि में इन्द्र अपनी पाठशाला के निमित्त समुद्र और बन जंगलों में खोजता फिरा; अन्त को हार मान बृहस्पति को रखना पड़ा। हम फिर कहते हैं कि यह हमारे भाग्य ही की महिमा थी कि वेही

पण्डितराज मृगयाशील श्वानके मुखमें शशाके धोखे से बद्रीकाश्रमकी एक कंदरा में पड़ गये। इनकी बुद्धि और विद्याकी प्रशंसा करते दिनमें सरस्वती भी लज्जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि इनके थोड़े ही परिश्रमसे पंडित मूर्ख और अवोध पंडित हो जायेंगे। हे मित्र ! मेरे निकट जो महाशय बैठे हैं इनका नाम पंडित पाखण्डप्रिय है। किसी समय इस देशमें इनकी बड़ी मानता थी। सब स्त्री पुरुषोंको इन्होंने मोह रक्खा था। परन्तु अब कालचक्रके मारे अँगरेजी पढ़े हिन्दुस्तानियों ने इनकी बड़ी दुर्दशा की। इस कारण प्राण बचाकर हिमालयकी तराईमें हरित दूर्वापर संतोष कर अपना कालक्षेत्र करते थे। विपत्ति ईश्वर किसीपर न डाले। जब तक इनका राज था दृष्टि बचाकर भोग लगाया करते थे। कहाँ अब श्वान शृगालके सङ्ग दिन काटने पड़े। परन्तु फिर भी इनकी बुद्धिपर पूरा विश्वास है कि एक कार्तिक मास भी इनको लोग थिर रह जाने देंगे तो हरिकृपासे समस्त नवीन धर्मों पर चार पाँच दिनमें पानी फेर देंगे।

इनसे भिन्न, पण्डित प्राणांतकप्रसाद भी प्रशंसनीय पुरुष हैं। जब तक इस घटमें प्राण है तब तक न किसी पर इनकी प्रशंसा बन पड़ी न बन पड़ेगी। ये महावैद्यके नामसे इस समस्त संसारमें विख्यात हैं। चिकित्सा में ऐसे कुशल हैं कि चिता पर चढ़ते-चढ़ते रोगी इनके उपकार का गुण नहीं भूलता। कितना ही रोगसे पीड़ित क्यों न हो, क्षण भर में स्वर्गके सुखको प्राप्त होता है। जबतक औषधि नहीं देते केवल उसी समय तक प्राणी के संसारी विधा लगी रहती है। आप लोग कुछ काल की अपेक्षा कीजिये इनकी चिकित्सा और चतुराई अपने आप प्रकट हो जायगी। यद्यपि आपके अमूल्य समय में बाधा हुई, परन्तु यह भी स्वदेश की भलाई का काम था, इस हेतु आप आतुर न हूजिये और शेष अध्यापकों की अमृतमय जीवन कहानी श्रवण कीजिये।

ये लुप्तलोचन ज्योतिषाभरण बड़े उद्दंड पण्डित हैं। ज्योतिष विद्यामें अति कुशल हैं। कुछ नवीन तारे भी गगनमें जाकर ये ढूँढ़

आये हैं, और कितने ही नवीन ग्रन्थों की भी रचना कर डाली है। उनमेंसे “तामिस्रमकरालय”^१ प्रसिद्ध और प्रशंसनीय है। यद्यपि इनको विशेष दृष्टि नहीं आता, परन्तु तारे इनकी आँखोंमें भली भाँति बैठ गये हैं।

रहे पण्डित शीलदावानल-नीतदर्पण। इनके गुण अपार हैं। समय थोड़ा है, इस हेतु थोड़ा सा आप लोगों से आगे इनका वर्णन किया जाता है। ये महाशय बाल ब्रह्मचारी हैं। अपनी आयुभर नीति शास्त्र पढ़ते पढ़ाते रहे हैं इनसे नीति तो बहुतसे महात्माओंने पढ़ी थी परन्तु वेणु, बाणासुर, रावण, दुर्योधन, शिशुपाल कंस आदि इनके मुख्य शिष्य थे। और अब भी कोई कठिन काम आकर पड़ता है तो अंगरेज़ी न्यायकर्त्ता भी इनकी अनुमति लेकर आगे बढ़ते हैं। हम अपने भाग्यकी कदांतक सराहना करें! ऐसा तो संयोग इस संसारमें परम दुर्लभ है। अब आप सब सज्जनोंसे यही प्रार्थना है कि आप अपने अपने लड़कोंको भेजें और व्यय आदिकी कुछ चिन्ता न करें, क्योंकि प्रथम तो हम किसी अध्यापकको मासिक देंगे नहीं, और दिया भी तो अभी दस पांच वर्ष^१ पीछे देखा जायगा। यदि हमको भोजनकी श्रद्धा हुई तो भोजनका बंधान बाँध देंगे, नहीं यह नियम कर देंगे, कि जो पाठशालासम्बन्धी द्रव्य हो उसका वे सब मिलकर नाम लिया करें। अब रहे केवल पाठशालाके नियत किये हुए नियम सो आपको जल्दी सुनाये देता हूँ। शेष स्त्री शिक्षाका जो विचार था, यह आज रात को हम घर पूछ लें तब कहेंगे।

नियमावली

(१) नाम इस पाठशाला का “गगनगत अविद्यावृक्षालय” होगा।

^१समुद्र के अन्धकार के मगलों से भरा।

^२आकाश में स्थित अविद्या का समुद्र।

(२) इसमें केवल बंध्या और बिधवाके पुत्र पढ़ने आवेंगे ।

(३) डेढ़ दिनसे अधिक और पौने अठ्ठानबेसे कमती आयुके विद्यार्थी भीतर न आने पावेंगे ।

(४) सेरभर सुंघनी अर्थात् हुलाससे तीन सेरतक कच्चानुसार फीस देना पड़ेगा ।

(५) दो मिनट बारह बजे रातसे पूरे पाँच बजेतक पाठशाला होगी ।

(६) प्रत्येक उजाली अमावस्याको भरती हुआ करेगी ।

(७) कृष्णपक्षमें युवा स्त्री और शुक्ल पक्षमें बालक शिक्षा पावेंगे ।

(८) परीक्षा प्रतिमास होगी, परन्तु द्वितीय द्वादशीकी सन्धिमें हुआ करेगी ।

(९) वार्षिक परीक्षा ग्रीष्म ऋतु, माघ मासमें^१ होगी । उसमें जो पूरे उतरेंगे वे उच्च पदके भागी होंगे और पदोंके भिन्न पारितोषिकमें स्त्रियों को कामकी वस्तु और बालकोंको खेलके खिलौने मिलेंगे ।

(१०) इस पाठशाला में प्रथम पाँच कक्षा होगी । दो स्त्रियोंकी और तीन पुरुषोंकी । और प्रत्येक ऋतुमें अंतमें परीक्षा लेकर नीचेवाले ऊपरकी कक्षामें भर दिये जायेंगे ।

(११) प्रतिपदा और अष्टमी भिन्न, एक अमावस्याको स्कूल और खुलैगा, शेष सब दिन बन्द रहेगा ।

(१२) किसीको कामके लिए छुट्टी न मिलेगी, और परोक्ष होनेमें पाँच मिनटमें दो बार नाम कटेगा ।

(१३) कुछ भी अपराध करनेपर चाहे कितना ही तुच्छ हो “इण्ड-यन पिनल कोड” अर्थात् ताजीरात हिन्दके अनुसार दण्ड दिया जायगा ।

(१४) मुहर्रममें एक साल पाठशाला बन्द रहेगी ।

^१भारतेन्दुजी यहाँ चूक गये । आस्ट्रेलियामें माघमें ही कबी गरमी पड़ती है ।

(१५) मलमास में अनध्यायके कारण नृत्य और संगीतकी शिक्षा दी जायगी ।

(१६) छल, निन्दा, द्रोह, मोह आदि भवसागरके चतुर्दशकोटि रत्न घोलकर पिलाये जाया करेंगे ।

(१७) इसका प्रबन्ध धूर्तवंशावतंसनाम जगतविदित महाशय करेंगे ।

(१८) नीचे लिखी हुई पुस्तकें पढ़ायी जायेंगी ।

व्याकरण—सुग्धमंजरी, शब्दसंहार, अज्ञानचंद्रिका ।

धर्मशास्त्र—वंचकवृत्ति रत्नाकर^१, पाखंडविडंबन, अधर्मसेतु ।

वैद्यक—मृत्युचिन्तामणि^२, मनुष्यधनहरण, कालकुठार^३ ।

ज्योतिष—मुहूर्त्तमिथ्यावली, मूर्खाभरण, गणितगवांकुर ।

नीतिशास्त्र—नष्टनीतिदीप, अनीतिशतक, धूर्त्तपंचाशिका ।

इन दिनोंकी सभ्यताके मूल ग्रन्थ—असत्यसंहिता, दुष्टचरितामृत, अष्टभास्कर ।

कोश—कुशब्दकल्पतरु, शून्यसागर ।

नवीन नाटक—स्वार्थ संग्रह कृतघ्नकुलमण्डन ।

अब जिस किसीको हमारी पाठशालामें पढ़ना अंगीकार हो, यह समाचार सुननेके प्रथम, तारसे खबर दे । नाम उसका किताबमें लिख लेंगे पढ़नेको आओ चाहे मत आओ ।

^१ ठगीके पेशेके रत्नोंकी खान ।

^२ मृत्युकी चिन्ता उत्पन्न करनेके सर्वोत्तम उपायोंका ग्रन्थ ।

^३ कालकी कुरहाड़ी, अर्थात् वह कुरहाड़ी जिससे मृत्यु औरोंको मारती है, वह नहीं जो मृत्यु पर चलायी जाय ।

१०--डा० नज़ीर अहमद

डाक्टर नज़ीर अहमद बिजनौर जिले के अन्तर्गत नगीना नामक स्थान में सं० १८९३ में पैदा हुए। पहले अपने पिता के साथ बिजनौर में ही रहे, पर सयाने हुए तो दिल्ली में जा बसे और अन्ततः वहीं के निवासी हो गये। शिक्षा प्रायः घरेलू थी। सं० १९०२ में दिल्ली कालिज में भी प्रविष्ट हुए। यह केवल अरबी फ़ारसी का कालिज था। कालिज से निकलकर शिक्षा विभाग में नौकरी की। कानपुर और प्रयाग में डिप्टी इन्स्पेक्टर थे। प्रयाग में काम चलाक अंगरेज़ी पढ़ली। राजाज्ञा से कई कानून के ग्रन्थों का अनुवाद उर्दू में किया। पुरस्कार में डिप्टी इन्स्पेक्टरी से डिप्टीकलक्टर मिली। सं० १९३४ में हैदराबाद में किसी बड़े पदपर नियुक्त हुए। वहाँ कई वर्ष रहकर तैलङ्गा भाषा सीखी। अन्ततः दिल्ली आकर रहने लगे। विद्याभ्यसनी इस दर्जे के थे कि बुढ़ापे में सब काम से थके तां संस्कृत सीखी। सं० १९६९ के आरम्भ होते ही पचा-चात रोग से देहान्त हुआ।

नज़ीर अहमद उर्दू के ज़बर्दस्त लेखक थे। लेखक में सादगी है। इष्टान्तों और मुहावरों का प्रयोग बड़ी खूबी से करते हैं। अरबी के शब्दों के साथ ही ठेठ हिन्दी के शब्दों का प्रयोग ऐसे ढङ्ग से करते हैं कि अनमोल या बेजोड़ नहीं मालूम होता। इनकी भाषा शुद्ध दिल्ली की भाषा समझी जाती है। राजा शिवप्रसाद की हिन्दी की अपेक्षा डाक्टर नज़ीर अहमद की उर्दू में प्रायः अरबी फ़ारसीपन कम ही है।

मिरातुल-उरूस^१

गौर करना चाहिये कि जिस रोज़से आदमी पैदा होता है, जिन्दगी-में मरनेतक उसको क्या क्या बातें पेश आती हैं, और क्योंकि उसकी

^१नववभू दपंय; नई बहू की आरसी।

हालत बदला करती है। इन्सानकी ज़िन्दगी में सबसे अच्छा वक्त लड़कपनका है। इस उम्रमें आदमी को किसी तरहकी फ़िक्र नहीं होती। माँ और बाप की निहायत शफ़क़त^१ और मुहब्बतसे उसको पालते हैं, औलादके अच्छा खाने अच्छा पहिनेसे माँ बाप को खुशी होती है, बल्कि माँ बाप औलादके आरामके वास्ते अपने ऊपर तकलीफ़ और रज़ गवारा कर लेते हैं। मर्द जो बाप होते हैं कोई मेहनत मज़दूरीसे कमाते हैं, कोई पेशा करते हैं, कोई सौदागरी, कोई नौकरी। गरज़ जिस तरह बन पड़ता है औलादकी आशाइश^२ के वास्ते रुपया पैदा करते हैं। औरतें जो माँ होती हैं अगर बापकी कमाई घरके खर्चको काफ़ी नहीं होती, बाज़-औक़ात^३ खुद भी रुपया पैदा करनेके वास्ते मेहनत किया करता हैं। कोई माँ सिलाई करती है, कोई गोटा बनाती हैं, कोई टोपियाँ काढ़ती है यहाँतक कि कोई मुसीबतमागी माँ चर्खा कातकर चक्की पीसकर या मामागरी^४ करके अपने बच्चोंको पालती है। औलादकी मुहब्बत जो माँ बापको होती है, बर्गिज बनावट और ज़ाहिरदारीकी नहीं होती बल्कि सच्ची और दिल्ली मुहब्बत है, और खुदातालाने^५ जो बड़ा दाना^६ है औलादकी यह ममता माँ बापको इसलिए लगा दी है कि औलाद पर-वरिश पाये। इब्तदाय^७ उम्रमें बच्चे निहायत बेबस होते हैं। न बोलते, न समझते, न चलते, न फिरते। अगर माँ बाप मेहनतसे औलादको न पालते तो बच्चे भूखों मर जाते। कहाँसे उनको रोटी मिलती, कहाँसे वह कपड़ा लाते और क्योंकर बड़े होते। आदमी पर क्या मौकूफ^८ है जानवरोंमें भी औलादकी ममता बहुत सख्त है। मुर्गी बच्चोंको किस तरह पालती? दिनभर उनको परोमें छिपाये बैठी रहती है, और अनाजका एक दाना भी उसको मिलता है, तो आप नहीं खाती, बच्चोंको

^१स्नेह। ^२आराम। ^३कभी-कभी, किसी दशामें। ^४मिसरानोका वारसोइयेका काम। ^५परमेश्वरने। ^६ज्ञानी, चतुर। ^७शुरू। ^८ख़तम, अन्त।

बुलाकर चौबसे उनके आगे रख देती है, और अगर चील या बिल्ली उसके बच्चों को मारना चाहे, तो अपनी जानका खयाल न करके लड़ने और मरने को मौजूद हो जाती है। गरज़ ख़ास मुहब्बत माँ बाप को इस लिए खुदा ने दी है कि छोटे से नन्हे नन्हें बच्चों को जो ज़रूरत हो वह अटकी न रहे। भूक के वक्त खाना और प्यास के वक्त पानी, सर्दी से बचने को गरम कपड़ा और हर तरह के आराम की चीज़ वक्त मुनासिब पर मिल जाय। देखने से यह बात मालूम होती है कि यह ख़ास मुहब्बत उसी वक्त तक रहती है जब तक बच्चों की ज़रूरत और ऐहतियात^१ होती है। उस मुर्गी के बच्चे बड़े हो जाते हैं, वह उनको परो में छिपाना छोड़ देती हैं, और जब बच्चे चल फिर कर अपना पेट आप भर लेने के काबिल हो जाते हैं, मुर्गी कुछ भी उनका मदद नहीं करती, बल्कि जब बहुत बड़े हो जाते हैं तो उनको इस तरह मारने लगती है गोया वह इनका माँ नहीं है। आदमी के माँ बाप का भी यही हाल है, जब तक बच्चा बहुत छोटा है, माँ दूध पिलाती है और उसको गोद में उठाये फिरती है। अपनी नींद हराम करके बच्चे को थपक थपककर सुलाती है। जब बच्चा इतना सयाना हुआ कि खिचड़ी खाने लगा, माँ दूध बिलकुल छुड़ा देती है, और वही दूध जिसको बरसों प्यार से पिलाती रही, सख़्त बेरहमी से नहीं पीने देती। कड़वा चीज़ें लगा देती है, और बच्चा ज़िद करता है तो मारती और घुड़कती है। चन्द राज़ के बाद बच्चों का यह हाल हो जाता है कि गोद में लेना तक नागवार हो जाता है। क्या तुमने अपने छोटे भाई बहिन को इस पर मार खाते नहीं देखा कि माँ की गोद से नहीं उतरते हैं, माँ ख़फ़ा हो रही है कि कैसा नाहमवार^२ बच्चा है, एक दम को गोद से नहीं उतरता। इन बातों से यह न समझो कि माँ को मुहब्बत नहीं,

^१आवश्यकता। ^२यौगिक अर्थ नाहमवार का नाबराबर वा असम है, यहाँ रूढ़ि से तात्पर्य है—बड़ मिज़ाज, टेढ़े स्वभाव का।

बल्कि हर हालत के साथ एक खास तरह की मुहब्बत होती है। औलाद का हाल यकसाँ नहीं रहता। आज पीते हैं, कल खाने लगे, फिर पावों चलना सीखा है। जितना बड़ा बच्चा होता गया, उसी क्रम में मुहब्बत का रङ्ग बदलता गया। लड़के और लड़कियाँ पढ़ने और लिखने के वास्ते कैसी कैसी मार खाती हैं, और अगरचे बेवकूफी से बच्चे न समझें लेकिन माँ बाप के हाथ से जो तकलीफ़ भी तुम को पहुँचे वह ज़रूर तुम्हारे अपने फ़ायदे के वास्ते हैं। तुमको दुनिया के माँ-बाप से अलग रह कर बहुत दिनों जीना पड़ेगा। किसी के माँ-बाप तमाम उम्र ज़िन्दा नहीं रहते। खुशनसीब^१ हैं वह लड़के और लड़कियाँ जिन्होंने माँ-बाप के जीते जी ऐसा हुनर और ऐसा अदब^२ सीखा जिससे उनकी तमाम ज़िन्दगी खुशी और आराम में गुज़री और निहायत बदकिस्मत^३ है वह औलाद जिन्होंने माँ-बाप की ज़िन्दगी की क्रूर न की और जो आराम माँ-बाप की बदौलत उनको मुयस्सर हुआ उसको अकारथ किया और ऐसे अच्छे फ़रागत और बेफ़िक्री के वक्त सुस्ती और खेल कूद में जाया^४ किया, और उम्र भर रंज और मुसीबत में काटी, आप अज़ाब^५ में रहे, और माँ-बाप को भी अपने सबब अज़ाब में रक्खा। मरने पर कुछ मौकूफ़ नहीं, शादी ब्याह हुये पीछे औलाद माँ-बाप से जीते जी छूट जाती है। जब औलाद जवान होती है, माँ-बाप बुढ़े हो जाते हैं और खुद औलाद के मुहताज हो जाते हैं। पस^६ जवान हुए पीछे औलाद को माँ-बाप से मदद मिलनी तो दरकिनार खुद माँ-बाप की ख़िदमत और मदद करनी पड़ती है। लड़को और लड़कियों को ज़रूर सोचना चाहिये कि माँ बाप से अलग हुए पीछे उनकी ज़िन्दगी क्योंकर गुज़रेगी। दुनिया में बहुत भारी बोझ मदों के सर पर है। दुनिया में खाना कपड़ा और रोज़मर्रा के^७ खर्चा की सब चीज़ें रुपये से हासिल होती हैं, और सब

^१ भाग्यवान। ^२ अदब के दो अर्थ हैं (अ) शिष्ट व्यवहार, तथा (इ) साहित्य। ^३ अभागी। ^४ नष्ट। ^५ सङ्कट। ^६ अतएव। ^७ नित्य के।

खटराग रुपये का है। औरतों को बड़ी खुशीकी बात है, कि अक्सर कमाने और रुपया पैदा करने की मेहनत से महफूज रहती है। देखो मर्द कैसी कैसी सख्त मेहनत करते हैं। कोई भारी बोझ सर पर उठाता है, कोई लकड़ी ढोता है, मोनार, लोहार, ठठेरा^१, कसेरा^२, कंदलागर^३, ज़रकोब^४, दवकैया^५, तारकश, मुलम्मेसाज^६, जड़िया, सल्मेसितारे-वाला, बटैया^७, बिदरमाज़^८, मीनासाज़^९, क़लईगर, सादाकार^{१०}, सीकलगर^{११}, आईनासाज़^{१२}, जग्दाज़^{१३}, मनिहार^{१४}, नालबन्द, नगीनासाज़, कामदानीवाला, सानगर नियारिया^{१५}, ढलैया, बढई, खर्गदी, नारियलवाला, कंधासान, बैसफोड़, काज़ी, जुलाहा, रफूगर रंगरज़, छींगी, दस्तारबन्द^{१६}, दर्जी, इलाक़ेबन्द^{१७}, नैचेबन्द, मोची

- ^१तांबे पीतल आदि के बरतन बनानेवाला। ^२कांस के बरतन बेचने-वाला। ^३कन्दला, टहला, वा बड़िया धातुमें घटिया धातु मिलाकर उत्तम जेवर बनानेवाला। ^४चांदी सोनेके वरक़ वा पत्र पीटकर बनानेवाला। जर (स्वर्ण) कोब (पीटनेवाला)। ^५तारकशीके लिये धातुके पत्र पीटनेवाला। तारकश तार खींचनेवाला। ^६घटिया धातुपर सोना चाँदी चढ़ानेवाला। ^७कलाबत्तू, वा पाट तथा स्वर्णके तारोंको मिलाकर, बटने वाला। ^८तांबे पर चाँदी आदि धातुओंका बारीक काम दक्षिणके बिदर (विदर्भ) नगर में बहुत ही उत्तम होता था। इसीलिए यह काम बिदर-साज़ीके नाम से प्रसिद्ध हो गया। ^९सुनहले रंग पर हरा रंग चढ़ाना। पहले सोनेपर हरे काँचके टुकड़े बिठा लेते थे। ^{१०}अंगूठीपर नग जड़नेवाले, प्रायः मुसलमान सादाकार कहलाते हैं। हिन्दू जड़िया सभी ज़ेवरोंपर नग जड़ते हैं। ^{११}सीकलगर वा शैक़लगर हथियारोंको चमकाते वा पालिश करते हैं। ^{१२}दर्पण बनानेवाला। ^{१३}पाट आदिके कपड़ोंपर सोनेके तारों से फूलपत्ती आदि बनानेवाले। ^{१४}चूड़ीवाला। ^{१५}सुनारोंकी राख कूड़े आदि से सोना चाँदी निकालनेवाला। ^{१६}पगड़ी बांधनेवाला। ^{१७}मुसलमान पट्टारा।

मुहरकन^१, संतराश, हक्काक^२, मेमार^३, दबगर^४, कुम्हार, हलवाई, तेली, तम्बोली, रंगसाज^५, गन्धी वगैरा जितने पेशेवाले हैं, सब कामों में बराबर दरजे की तकलीफ है, और यह तमाम तकलीफ रुपया कमाने के वास्ते मर्द सहते और उठाते हैं लेकिन इस बात से यह नहीं समझना चाहिये कि औरतों से खाने और सो रइने के सिवा दुनिया का कोई मुतअल्लिक नहीं है, बल्कि खानेदारी के तमाम काम औरतें करती हैं, मर्द अपनी कमाई औरतों के आगे रख देते हैं, और औरतें अकल से उनको ऐसे बन्दोबस्त और सलाके के साथ उठाती हैं, कि आराम के सिवा इज़्जत और नाम पर हर्फ नहीं आने पाता। पास अगर गौर से देखे तो दुनिया की गाड़ी जब तक एक पहिया मर्द का दूसरा पहिया औरत का न हो, चल नहीं सकती। मर्दों का रुपया कमाने से इतना वक्त नहीं बचता कि उसका घर क छोटे छोटे कामों में सर्फ करें। ऐ लड़को! यह बात सीखो कि मर्द होकर काम आये, और ऐ लड़कियो! वह हुनर हासिल करो कि औरत होने पर तुमको उससे खुशी और फायदा हो। बेशक औरतों को मर्द की निस्वत किसी क्रदर कमज़ोर पैदा किया है, लेकिन हाथ, पाँव, कान, आँख, अकल, समझ, याद सब मर्द के बराबर औरत को दिये हैं। लड़के उन्हीं चीज़ों से काम लेकर आलिम^६ हाफ़िज़^७, हकीम, कारीगर, दस्तकार^८, हरफन में ताक^९, और हर हुनर में मशशक^{१०}, हाँ जाते हैं। लड़कियाँ अपना वक्त गुड़िया खेलने और कढ़ा-नियाँ सुनने से खोती हैं, बेहुनर रहती हैं, और जिन औरतों ने वक्त की क्रदर और उसको काम की बातों में लगाया वह मर्द की तरह दुनियाँ में नामवर और मशहूर होती हैं, जैसे नूरजहाँ बेगम, जेबुन्निसा बेगम, या

^१मुहर खोदनेवाला। ^२नगीने काटनेवाला। ^३थवई, राजगीर।

^४चमड़े की कुप्पी आदि बनानेवाला। ^५रंग बनाने और असबाब रंगने-वाला। ^६विद्वान। ^७कुरान कण्ठ रखनेवाला। ^८शिल्पमें वा हाथके बारीक कामोंमें कुशल। ^९एक प्रधान। ^{१०}अभ्यस्त।

इन दिनों नवाब सिकन्दर बेगम, या अंग्रेजों की शाहजादी मलका विकटो-रिया । यह वह औरतें हैं जिन्होंने एक छोटे से घर या कुनवे का नहीं, बल्कि मुल्क और जहान का बन्दोबस्त किया बाज़ नादान औरतें खयाल करती हैं, कि बहुत पढ़कर क्या मर्दों की तरह मौलवी होना है, फिर मेहनत करने से क्या फ़ायदा, लेकिन अगर औरत ज्यादा पढ़ गयी है तो बेशक उसने ज्यादा फ़ायदा भी हासिल किया है । हम इस बात से इन्कार नहीं करते कि ज्यादा इल्म औरतों को ज़रूरत नहीं लेकिन जिस क़दर ज़रूर है उसको कितनी औरतें हासिल करती हैं । कम से कम हिन्दी पढ़ लेना निहायत ज़रूर है । अगर इतना नहीं है, तो बेशक हर्ज होता है, या अपने घर की बात ग़ैरों पर ज़ाहिर करनी पड़ती है, या उसके छिपाने से नुक़सान होता है । औरतों की बातें अक्सर हया^१ और परदे की होती हैं, लेकिन अपनी माँ बहिन से कभी उनको ज़ाहिर करने की ज़रूरत होती है, और इत्तिफ़ाक़ से माँ-बहिन वक्फ़ पर नहीं होती ऐसी सूरतमें^२ या तो हयाको बालायताक़^३ रखना पड़ता है, या न कहने के सबब नुक़सान उठाना पड़ता है । लिखना बनिस्वत^४ पढ़ने के किसी क़दर मुश्क़ल है, लेकिन अगर कोई शख्स किसी किताब से चार सतरों रोज़ नक़ल किया करे और इसी क़दर अपने दिल से बना कर लिखा करे और इस्लाह लिया करे, तो ज़रूर चन्द महीनों में वह लिखना सीख जायगा । ख़ुशख़बरी से^५ मतलब नहीं । लिखना एक हुनर है जो ज़रूरत के वक्फ़ बहुत काम आता है । अगर गुलत होता हो या हर्फ़ बदसूरत और नादुरुस्त लिखे जायें तो बेदिल होकर मश्क़को माँकूफ़ मत करो कोई काम हो इन्तदामें अच्छा नहीं हुआ करता । अगर किसी बड़े आलिमको एक टोपी कतरने और सीनेको दो जिसको कभी इत्तिफ़ाक़ न हुआ हो ज़रूर वह टोपी ख़राब करेगा । चलना फिरना जो तुमको

^१ लाज । ^२ दशा में । ^३ ताख़ पर या अलग उठा रखना । ^४ सापेक्ष ।

^५ सुन्दर लिखने से ।

अब ऐसा आसान है, कि बेतक़ल्लुफ़^१ दौड़ती फिरती हो तुमको शायद याद न रहा हो कि तुमने किस मुश्किल से सीखा मगर तुम्हारे मां-बाप और बुजुर्गों को बख़ूबी याद है कि पहले तुमको बेसहारे बैठना नहीं आता था। जब तुमको गोदसे उतार कर नीचे बैठाते थे एक आदमी पकड़े रहता था, या सहारा लगा देते थे। फिर तुमने गिरपड़कर घुटनियों चलना सीखा। फिर खड़ा होना, लेकिन चारपाई पकड़कर। फिर जब तुम्हारे पाँव ज़्यादा मज़बूत हो गये, रफ़ारफ़ा^२ चलना आगया। मगर सदहा^३ मर्तबा तुम्हारे चोट लगी और हर रोज़ तुमको गिरते सुना। अब वही तुम हो कि खुदा के फ़ज़ल से^४ माशाअल्लाह^५ दौड़ी दौड़ी फिरती हो। इसी तरह एक दिन लिखना भी आ जायगा। और फ़र्ज़ करो तुमको लड़कों की तरह अच्छा लिखना न भी आया ताहम^६ बक़दरज़रूरत^७ तो ज़रूर आ जायगा और यह मुश्किल तो न रहेगी कि धोबिन के कपड़े, और पीसनेवाली की पिसाइयों के वास्ते दीवार पर लाकीरें खींचती फ़िरो, या पत्थर जाड़ कर रक्खो। घरका हिसाब किताब, लेना देना ज़बाना याद रखना बहुत मुश्किल है। बाज़ मर्दों की आदत होती है कि जो रुपया पैसा घर में दिया करते हैं उसका हिसाब पूछा करते हैं। अगर ज़बानी याद नहीं है, तो मर्द को सुबह होता है कि यह रुपया कहाँ खर्च हुआ और आपस में नाहक़ रंज और फ़साद पैदा होता है। अगर औरतें इतना लिखना भी सीख लिया करें कि अपने समझाने के वास्ते काफ़ी हो तो कैसी अच्छी बात है। लिखने पढ़ने के अलावा सीनापिरोना, खाना पकाना यह दोनों हुनर हर एक लड़की को सीखने ज़रूर हैं। किसी आदमी को यह हाल मालूम नहीं है कि आइन्दा^८ उसको क्या इत्ति-

^१सहजही। ^२धीरे धीरे। ^३शतधा, सैकड़ों। ^४कृपा से। ^५जो कुछ ईश्वर ने चाहा। ^६तो भी। ^७आवश्यकतानुसार।

काक^१ पेश^२ आयेगा । बड़े दौलतमन्द यकायक गरीब और मुहताज हो जाते हैं । अगर कोई हुनर हाथ में पड़ा है, ज़रूरत के वक्त काम आता है । यह एक मशहूर बात है कि अगले वक्तों के बादशाह बावजूद^३ दौलत और सर्वत के ज़रूर कोई काम सीख रक्खा करते थे, ताकि मुसीबत के वक्त काम आए ।

^१अचानक, दैवयोग । ^२आगे आयेगा; पड़ेगा । ^३होते हुए वैभव ।

११—लाला श्रीनिवासदास

लाला श्रीनिवासदास मारवाड़ी वैश्य थे। दिल्ली के रईस थे। राजा लक्ष्मणदासजी की ओर से उनकी दिल्ली की कोठी के संचालक थे। स्वाध्याय से अँग्रेजी तक सीख डाली थी। स्वाभाव से ही शास्त्रव्यसनी थे। बाबू हरिश्चन्द्र के समकालीन थे। ११०८ वि० में जन्मे और केवल ३६ वर्ष की अवस्था में ११४४ वि० में परलोक सिधारे। तत्सामवरण, संयोगिता स्वयंवर और रणधीर प्रेममोहनी यह तीन मौलिक नाटक लिखे जाँ उच्च कोटि के ग्रंथ हैं परीक्षा-गुरु उच्चकोटि की प्रबन्ध कल्पना है जहाँ कहीं इनकी मौलिक कविता देखने में आती है बड़ी ही सरस है, परन्तु अनुवाद में कहीं कहीं शिथिलता है और कहीं कहीं प्रसाद गुण की कमी है। गद्य टकसाली है भिन्न भिन्न शैलियों पर लेखक का पूरा अधिकार है। परीक्षागुरु में अँग्रेजी की शैली का स्पष्ट अनुकरण है। कथितांशके पीछे “अमुक बोले” “लाला मदनमोहन ने तर्क की” इत्यादी अँग्रेजी रीति है। विराम का प्रयोग भी प्रायः अँग्रेजी है। परन्तु ग्रन्थ मौलिक है। ठेठ दिल्ली वाले “ओ” और “औ” तथा “ए” और “ऐ” दोनों के बीचोबीच एक विशिष्ट स्वरका उच्चारण करते हैं, जिसे स्पष्ट दिखाने के लिये मूल ग्रन्थ में अधिकांश “ए” की जगह “ऐ” का ही प्रयोग किया है। दिल्ली के मुहावरों के लिए लाला श्रीनिवासदास प्रमाण हैं। डा० नजीर अहमद और लाला श्रीनिवासदास दोनों दिल्ली-वाले थे, दोनों पर ही अँग्रेजी का प्रभाव पड़ा था। परन्तु शैली में मुसलमान और हिन्दू का विशिष्ट अन्तर है। दार्शनिक विषय होते हुए भी उद्धृतांशमें “मूजिब” “सवाल” “जरूरत” “लायक” इत्यादि अरबी शब्द बे फिस्सक आ गये हैं। नाटकों में दिल्ली की उर्दू के ख़ासे उदाहरण हैं। इन दो ग्रन्थकारों के समीक्षात्मक अनुशीलन से साफ़ खुल जाता है

कि दोनों शैलियों में अरबी और संस्कृत मुसलमान और हिन्दू इन दो सभ्यताओं का ही अन्तर है। संयोग से वह बात नहीं मिलती है कि दोनों लेखकों पर प्रायः समान रूप से अंग्रेजी का प्रभाव पड़ा हुआ है। दोनों प्रायः समकालीन थे, परन्तु परस्पर परिचय का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

परीक्षा गुरु

भले बुरे की पहिचान

धर्म अर्थ शुभ कहत कोउ काम अर्थ कहि जान।

कहत धर्म कोउ अर्थ कोउ तीनहु मिल शुभ जान ॥

“आपके कहने के मूजिव किसी आदमी की बातों से उसका स्वभाव नहीं जाना जाता, फिर उसका स्वभाव पहचानने के लिये क्या उपाय करें ?” लाला मदनमोहन ने तर्क^१ की।

“उपाय करने की कुछ ज़रूरत नहीं है, समय पाकर सब भेद अपने आप खुल जाता है” लाला ब्रजकिशोर कहने लगे। “मनुष्य के मन में ईश्वर ने अनेक प्रकार की वृत्तियाँ उत्पन्न की हैं, जिनमें परोपकार की इच्छा, भक्ति और न्यायपरता धर्मप्रवृत्ति में गिनी जाती है। दृष्टान्त और अनुमानादि के द्वारा उचित अनुचित कामों की विवेचना, पदार्थ-ज्ञान और विचारशक्ति का नाम बुद्धि वृत्ति है। बिना विचारे अनेक बार के देखने सुनने आदि से जिस काम में मन की प्रवृत्ति हो उसे आनुषंगिक^२ प्रवृत्ति कहते हैं। काम, सन्तानस्नेह, संग्रह करने की

*धर्मार्थानुच्यते श्रेयः कामार्थौ धर्म एव च।

अर्थ एवेह व श्रेयस्त्रिवर्गं इति तु स्थितिः ॥

^१तर्क पुख्तिग है। जान पड़ता है कि लेखक ने ‘बहुस’ का अर्थ लेकर साथ ही इसे स्त्रीलिंग माना है। ^२साथ होनेवाली, गौण। ^३इत्या करने की, हिंसा करने की वा बदला लेने की इच्छा।

लालसा जिघांसा^१ और आत्मसुख की अभिरुचि इत्यादि निकृष्ट प्रवृत्ति में शामिल हैं। और इन सब के अविरोध से जो काम किया जाय वह ईश्वर के नियमानुसार समझा जाता है, परन्तु किसी काम में दो वृत्तियों का विरोध किसी तरह न मिट सके तो वहाँ ज़रूरत के लायक आनुषङ्गिक प्रवृत्ति और निकृष्ट प्रवृत्ति को धर्मप्रवृत्ति और बुद्धिप्रवृत्ति से दबा देना चाहिये, जैसे श्रीरामचन्द्रजी ने राजपाट छोड़कर वन में जाने से धर्मवृत्ति को उत्तेजित किया था।”

“यह तो सवाल और, जवाब और हुआ। मैंने आपसे मनुष्य का स्वभाव पहचानने की राह पूछी थी, आप बीच में मन की वृत्तियों का हाल कहने लगे” लाला मदनमोहन ने कहा।

“इसीसे आगे चलकर मनुष्य के स्वभाव पहचानने की रीति मालूम होगी।”

“पर आप तो काम, सन्तानस्नेह आदि के अविरोध से भक्ति और परोपकारादि करने के लिए कहते हैं, और शास्त्रों में काम क्रोध, लोभ, मोहादि की बारम्बार निन्दा की है, फिर आपका कहना ईश्वर के नियमानुसार कैसे हो सकता है?” पण्डित पुरुषोत्तमदास बीच में बोल उठे।

“मैं पहिले कह चुका हूँ कि धर्मवृत्ति और निकृष्ट प्रवृत्ति में विरोध हो, वहाँ ज़रूरत के लायक धर्म प्रवृत्ति को प्रबल मनाना चाहिये, परन्तु धर्मप्रवृत्ति और बुद्धिप्रवृत्ति का बचाव किये पीछे भी निकृष्ट प्रवृत्ति का त्याग किया जायगा तो ईश्वर को यह रचना सर्वथा निरर्थक ठहरेगी। पर ईश्वर का कोई काम निरर्थक नहीं है। मनुष्य निकृष्ट प्रवृत्ति के वश होकर धर्मप्रवृत्ति और बुद्धिप्रवृत्ति की रोक नहीं मानता, इसीसे शास्त्र में बारम्बार उसका निषेध किया है, परन्तु धर्मप्रवृत्ति और बुद्धि को मुख्य माने पीछे; उचित रीतिसे निकृष्ट प्रवृत्ति का आचरण किया तो गृहस्थ के लिये दूषित नहीं हो सकता। हाँ उसका नियम उल्लंघन कर किसी

^१हस्या, हिसा, प्रतिजोग की भावना।

एक वृत्ति की प्रबलता से और और वृत्तियों के विपरीत आचरण कर कोई दुःख पावे, तो इसमें किसीका बस नहीं। सब से मुख्य धर्मप्रवृत्ति है, परन्तु उसमें भी जबतक और वृत्तियोंके हककी रक्षा न की जायगी, अनेक तरहके बिगाड़ होने की संभावना बनी रहेगी।

“मुझको आपकी यह बात बिल्कुल अनोखी मालूम होती है। भला परोपकारादि शुभ कामोंका परिणाम कैसे बुरा हो सकता है।” पण्डित पुरुषोत्तमदास ने कहा।

“जैसे अन्न प्राणाधार है, परन्तु अति भोजनसे रोग उत्पन्न होता है” लाला ब्रजकिशोर कहने लगे। “देखिये परोपकारकी इच्छा ही अत्यन्त उपकारी है परन्तु हृदसे आगे बढ़नेपर वह भी फ़िजूलखर्ची समझी जाय और अपने कुटुम्ब परिवारादि का सुख नष्ट हो जायगा। जो आलसी अथवा अधर्मियोंकी सहायता की, तो उससे संसारमें आलस्य और पापकी बुद्धि होगी। इसी तरह कुपात्रमें भक्ति होने से लोक परलोक दोनों नष्ट हो जायेंगे; न्यायपरता यद्यपि सब वृत्तियोंको समान रखनेवाली है परन्तु इसकी अधिकतासे भी मनुष्यके स्वभावमें मिलन-सारी नहीं रहती, क्षमा नहीं रहती। जब बुद्धिवृत्तिके कारण किसी वस्तुके विचारमें मन अत्यन्त लग जायगा तो और जानने लायक पदार्थों की अज्ञानता बनी रहेगी। मनको अत्यन्त परिश्रम होने से वह निर्बल हो जायगा और शरीरका परिश्रम बिल्कुल न होने के कारण शरीर भी बलहीन हो जायगा। आनुषंगिक प्रवृत्तिके प्रबल होनेके जैसे संग होगा वैसा रंग तुरन्त लग जाया करेगा। कामकी प्रबलतासे समय असमय और स्वस्त्री परस्त्री आदिका विचार न रहेगा। सन्तानस्नेहकी वृत्ति बढ़ गयी तो उसके लिये आप अधर्म करने लगेगा। उसको लाड़ प्यारमें रखकर उसके लिये जुदे काटे बोयेगा। संग्रह करनेकी लालसा प्रबल हुई तो जोरीसे, चोरीसे, छलसे, खुशामदसे, कमाने की ढिंढ्या^१ बढ़ेगी और

^१ उल्लास इच्छा, चसका।

खाने खर्चने के नामसे जान निकल जायगा । जिघांसावृत्ति प्रबल हुई तो छोटी छोटी सी बातों पर अथवा खाली सन्देहपर ही दूसरोंका सत्यानास करने की इच्छा होगी, और दूसरेको दण्ड देती बार आप दण्डयोग्य बन जायगा । आत्म सुखकी अभिरुचि हृद्से आगे बढ़ गयी तो मनको परिश्रमके कामोंसे बचाने के लिए गाने बजानेकी इच्छा होगी अथवा तरह तरहके खेल तमाशे हँसी चुहलकी बातें, नशेबाज़ी, और खुशामद में मन लगेगा । द्रव्यके बलसे विना धर्म किये धर्मात्मा बनना चाहेंगे । दिन रात बनावसिगार में लगे रहेंगे, अपना मानसिक उन्नति करनेके बदले उन्नति करनेवालोंसे द्रोह करेंगे, अपनी भूठी ज़िद निवाहने में सब बड़ाई समझेंगे, अपने फ़ायदेकी बातों में औरोंके हक़का कुछ विचार न करेंगे । अपने काम निकालनेके समय आप खुशामदी बन जायेंगे । द्रव्यकी चाहना हुई तो उचित उपायोंसे पैदा करनेके बदले जुआ, बदनी,^१ धरोहड़, रसायन,^२ या घरी ढकी दौलत ढूँढते फिरेंगे ।”

“आप तो फिर वही मनकी वृत्तियों का भगड़ा ले बैठे । मेरे सवाल का जवाब दीजिये या हार मानिये” लाला मदनमोहन उकताकर कहने लगे ।

“जब आप पूरी बात ही न सुनें तो मैं क्या जवाब दूँ ? मेरा मत-लब इतने विस्तार से यह था कि वृत्तियोंका सम्बन्ध मिलाकर अपना कर्त्तव्य कर्म निश्चय करना चाहिये । किसी एक वृत्तिकी प्रबलतासे और वृत्तियोंका विचार न किया जायगा तो उसमें बहुत नुक़सान होगा” लाला ब्रजकिशोर कहने लगे ।

“वाल्मीकि रामायणमें भरतसे रामचन्द्रने और महाभारतमें नारद-मुनिने राजा युधिष्ठिरसे प्रश्न किया है ।

^१बदबदकर खेलना वा बाज़ी लगाना । ^२घटिया धातु से सोना चांदी बनानेकी रीति ।

धर्महि धन, अर्थहि धरम, बाधक तो कहुँ नाहि ?
 काम न करत बिगार कछु, पुनि इन दोउन माहि ?
 विदुर प्रजागरमें विदुरजी राजा धृतराष्ट्रसे कहते हैं—
 धर्म अर्थ अरु काम, यथा समय सेवत जु नर ।
 मिलि तीनहु अभिराम, ताहि देत दुहुँ लोकसुख ॥
 विष्णुपुराणमें कहा है—
 धर्म विचारै प्रथम पुनि, अर्थ धर्म अविरोध ।
 धर्म, अर्थ बाधारहित, सेवे काम सुसोधि ॥
 रघुवंशमें अतिथि की प्रशंसा करती बार महाकवि कालीदासने
 कहा है—

निरी नीति कायरपनो केवल बलपशु धर्म ।
 तासो उभय मिलाय इन सिद्ध किये सब कर्म ॥
 हीन निकम्मे होत हैं बली उपद्रववान ।
 तासों कीन्हें मित्र तिन मध्यम बल अनमान ॥

चाणक्यने लिखा—

बहुत दान तें बलि बँध्यो, मान मरो कुरराज ।
 लम्पटपन रावण हत्यो, अति बर्जित सब काज ॥

^१फ्रीजियाके मशहूर हकीम एपिकटेट्सकी सब नीति इन दो बचनों-
 में समायी हुई है कि 'धैर्यसे सहना और मध्यम भावसे रहना' चाहिये ।

कुरानमें कहा है कि आप (लोग) खाओ पीओ परन्तु फिजूल
 खर्ची न करो ।

^१फ्रीजिया यवनदेशके एक प्रान्त का नाम था । विक्रमकी दूसरी
 शताब्दीमें एपिकटेट्स नामक एक विद्वान नीतिका प्रसिद्ध आचार्य इसी
 प्रान्तके हीरापुर नगरीका निवासी था । यूनानके प्रसिद्ध दार्शनिकोंमें
 इसकी गिनती है । हकीम दार्शनिकको कहते हैं ।

वृन्द कहता है—

कारज सोई सुधरिहै जो करिये मन भाय ।

अति बरसे बरसे बिना जों खेती कुम्हिलाय ॥

“अच्छा, ससार में किसी मनुष्यका इस रीतिपर पूरा बरताव भी आज तक हुआ है ?” बाबू बैजनाथने पूछा ।

“क्यों नहीं, देखिये, पाईसिट्रोएस नामी एथीनियनका^१ नाम इसी कारण इतिहासमें चमक रहा है । वह उदार होनेपर फिजूलखर्च न था, और किसीके साथ उपकार करके प्रत्युपकार नहीं चाहता था, बल्कि अपनी नामवरीकी भी चाह न रखता था । वह किसी दरिद्रके मरनेकी खबर पाता तो उसके क्रिया-कर्मके लिए तत्काल अपने पाससे खर्च भेज देता । दरिद्रको विपदग्रस्त देखता तो अपने पाससे सहायता करके उसके दुःख दूर करनेका उपाय करता, पर कभी किसी मनुष्यको उसकी आवश्यकतासे अधिक देकर आलसी और निरुद्यमी नहीं होने देता था । हाँ, सब मनुष्यकी प्रकृति ऐसी नहीं हो सकती । बहुधा जिस मनुष्यके मनमें जो वृत्ति प्रबल होती है वह उसको खींचकर अपनी ही राहपर ले जाती है—जैसे एक मनुष्य जङ्गलमें रुपयोंकी थैली पड़ी पावे और उस समय उसके आसपास कोई न हो तब संग्रह करने की लालसा कहती है कि “इसे उठा लो” । सन्तानस्नेह और आत्मसुखकी अभिरुचि सम्मति देती है कि “इस कामसे हमको भी सहायता मिलेगी ।” त्यागपरता कहती है कि “न अपनी प्रसन्नतासे यह किसी ने हमको दी न हमने परिश्रम करके यह किसीसे पायी, फिर इसपर हमारा क्या हक है ? और इसको लेना चोरी से क्या कम है ? इसे परधन समझकर छोड़ चलो” । परोपकारकी इच्छा कहती है कि “केवल इसका छोड़ जाना उचित नहीं, जहाँतक हो सके उचित रीतिसे इसको इसके मालिकके पास पहुँचानेका उपाय करो” । अब इन वृत्तियोंमेंसे जिस वृत्ति के अनुसार

^१ यवन देशकी राजधानी एथेन्सका रहनेवाला ।

मनुष्य काम करे वह उसी मेल में गिना जाता है यदि धर्मवृत्ति प्रबल रही तो वह मनुष्य श्रद्धा समझा जायगा; और निकृष्ट प्रवृत्ति प्रबल रही तो वह मनुष्य नीच गिना जायगा और इस रीतिसे भले बुरे मनुष्य की परीक्षा समय पाकर अपने आप हो जायगी, बल्कि अपनी वृत्तियों को पहचानकर मनुष्य अपनी परीक्षा भी आप कर सकेगा। राजपाट, धन दौलत, विद्या स्वरूप वंशमर्यादासे भले बुरे मनुष्य की परीक्षा नहीं हो सकती। विदुरजी ने कहा है—

“उत्तम कुल आचार बिन, करे प्रमाण न कोई।

कुलहीनौ आचारयुत लहे बढ़ाई सोइ ॥”



१२—पं० रतननाथ दर (सरशार)

लखनऊ में पैदा हुए। कश्मीरी ब्राह्मण थे। चार ही बरस के थे जब इनके पिता पं० बैजनाथ साहब का स्वर्गवास हो गया। फिर भी इनकी शिक्षा अच्छी हुई। अरबी फ़ारसी के अप्रतिम विद्वान थे। अंग्रेजी भी जानते थे। उर्दू की कविता में असीर के शिष्य थे। संवत् १९३४ वि० में अवध अखबार के सम्पादक हुए। इस काम से अलग होने पर एक सामयिक पत्र “खमकदासरशार” स्वयं निकालने लगे। सं० १९५४ में हैदराबाद (दक्खिन) गये। तत्प्रभवान् महाराजा सर किसनप्रसाद बहादुर सेनासचिव थे, उन्हीं के यहाँ रह गये। सं० १९६० में वहीं स्वर्ग सिधारे।

उर्दू में नये ढंग से इतने नावल लिखना इन्हींने आरम्भ किया। लखनऊ की भाषा के यह इतने बड़े उस्ताद थे कि नवाबों और बेगमों से लेकर कहार कुँजड़े भिरती भटियारे तक की भाषा की नकल ठीक ठीक उतारना इन्हीं का काम था। अपने समय की सामाजिक दशा की विशेषतः लखनऊ की जीती-जागती तस्वीर खींची है। इनकी रचना में वर्णन के विस्तार की विशेषता है। फ़िसाना आज़ाद में जिसे इनका महाकाव्य कहा जाय तो अनुचित न होगा, सब तरह के विषयों पर मोके मोकेपर निबंध लिखे गये हैं। फ़ारसी अरबी के लच्छेदार अलंकारिक समास ऐसे प्रयोग किये हैं कि कादम्बरी की याद आती है पर जहाँ पात्रों में परस्पर बातचीत है वहाँ भाषा सरल है, रोजमर्रा और मुहावरों का सौन्दर्य है, स्वाभाविकता की हृद हो गयी है।

द्विस्तली मजाक के मजामी लिखने में भी इन्हें कमाल था। पहले “अवधपंचके” जन्मदाता मौ० सज्जाद हुसेन से बड़ी मैत्री थी और पंच के बड़े सहायकों में थे। परन्तु मु० नवलकिशोर जो अवध अखबारके स्वामी थे सर सैयद आदिके साथ कांग्रेस के विरोधी थे, इसीलिए जब से पण्डित-

जी “अवध अखबार के” सम्पादक हुए “अवध पंच” से खटपट हो गयी और धीरे धीरे गहरा बैमन्य हो गया ।

जो अंश, यहाँ उद्धृत हुआ है, बेगमों की भाषा का छोटा सा नमूना है लोग विदेशी शब्दों का एकदम बहिष्कार करके विशुद्ध हिन्दी लिखने के पक्षपाती हैं, विचार करें कि हमारे देश में ही लखनऊ से लेकर पञ्जाब के शहरों की मुसलमान औरतें कैसी हिन्दी बोलती हैं—मर्दों का तो कुछ कहना ही नहीं है । जब हम साधारण पढ़े लिखे शिष्ट समुदाय की ओर नज़र डालते हैं तो यही दृश्य देखने में आता है । निदान रोज़मर्रा और मुहाविरें हमें मिश्रित हिन्दी की ओर ही खींचे लिये जाते हैं । जहाँ कहीं हम मिले जुले शब्दों का बहिष्कार करते हैं और शुद्ध शैली की ढींग हाँकने लगते हैं वहाँ उसी तरह ठोकर खाते हैं जिस तरह सरशार महोदय ने दिए हुए अवतरण में जहाँ तहाँ ठोकरें खायी हैं ।

बेगमों की बोली

(किसान आज़ाद से)

हुस्नारा बेगम की जादू बयानी^१ ने सब के दिलों पर पूरा पूरा असर किया, मगर एक हमजोली ने जो क्रस्बे में असें दराज़ तक^२ रही थी कहा कि बहिन, बाज़ बाज़ बातें हमारी समझ में नहीं आयीं ।

हुस्नारा० । ऐ है ! सच कहो बहिन वह कौन बातें हैं ?

नाजुकअदा बेगम । तुम समझती नहीं, वह तो गवारिन हैं न ?

जानी बेगम । यह किस पर इनायत^३ हुई ! करीमन पर ?

नाजुक० । ओ हो हो हो ! नाम कितना प्यारा है !

बहारुन्निसा । हुस्नारा ने चश्म बददूर^४ बड़ी तरक्की^५ की है ।

^१मनोहर वर्णन । ^२बहुत असें तक, बहुत दिनों तक । ^३कृपा ।

^४भगवान बुरी नज़र (ठीक, दृष्टि चक्षु, चश्म) को दूर रखे । नज़र न लगे । ^५उन्नति ।

क्रमरुजिसा । इनमें क्या शक है, मदों के कान काटे । इस शहर से क्या मानी^१ मुल्कों मुल्कों जो ढूँढ़ों तो उनका जवाब^२ न निकले ।

वज़ीरुजिसा । जैसी तारीफ़ सुनी थी, वैसा ही पाया इनको ।

नज़र ख़ानम । बस, ज़रा बाज़ बाज़ बातों में तो अलबत्ता दुनिया से निराली हैं, बाक़ी पढ़ने लिखने में तो जैसी बर्क़^३ है सारा ज़माना जानता है ।

बहू बेगम । हां, रवाज़ के खिलाफ़ बाज़ बातें हमने देखीं ।

नाजुक । अब कुआंरी लड़की कोई भी ऐसी होगी भला ।

बहू० । जो करें ज़ेबा है । अल्लाह ने अक़ल में, इल्म में सब से ज्यादा बनाया है । फिर ग़ैरतदार^४ बासलीक़ा^५ तामीज़दार^६ ।

सिपेह्रार बेगम । करीमन बेचारी की समझ में जो न आया हो वह तो समझा दो । यह बेचारी उस वक्त से रो रही है ।

नाजुक । रोएं उनके दुश्मन । क्यों कोसती हो ।

सिपेह्रारा० । तुम लड़वाये बग़ैर तो रहोगी नहीं बहिन !

नाजुक० । अब आख़िर किस ज़बान में हुस्नारा बातचीत करें जो करीमन की समझ में आये हमारी तो यही बोली है ।

हुस्नारा० । हाँ, बहिन, अब गँवारी बोली तो आने से रही ।

नाजुक० । फ़ारसी अरबी के लफ़्ज़ जो आमफ़हम^७ थे लिखे हैं इसमें मुश्किल कौन बात है और ठेठ हिन्दी तो कोई लिख ही नहीं सकता । दो चार दस पाँच लफ़्ज़ इस तरह के ज़रूर आ जायेंगे ।

हुस्नारा० । वाह ! यह न कहो बहिन ! क्या मजाल^८ जो उर्दू फ़ारसी का एक लफ़्ज़ भी आने पाये ! क्या हम लफ़्ज़ों के हाथ बिक गये हैं कुछ !

^१इस शहर की तो कोई बात ही नहीं । ^२समान, उपमान । ^३तेज़ (बर्क़ बिजली) ^४छज्जावती । ^५शिष्ट । ^६विवेकवती । ^७सरल, सहज, जो सर्वसाधारण समझें । ^८ताक़त ।

नाजुक० । अगर दस सतरें भी ऐसी लिख दो तो बीस रुपये हारती हूँ । जितनी सतरें लिखो उनके दूने रुपये गिनवा लो । चलो योही सही । हुस्नारा० । हार जाओगी और मैं रुपये ले ही लूंगी । नाजुक० । एक सतर तो लिखो भला ! लिखके देख लो ! हुस्नारा० । मठरी ! कलम दवात कागज़ लाओ जाके ! हुस्नारा ने यो मजमून^१ लिखना शुरू किया ।

लड़कों को गहना पिन्हाना

मेरी प्यारी बहनो ! बहुत दिनों से मेरा जी चाहता है कि लड़कों को गहना पिन्हाने से जो जो बुराइयां होती हैं वह लिखूं । सो अब लिखती हूँ । जी चाहे तो जी लगा के पढ़ो और जो पढ़ो उसको सोचो, और वह यह है । पहले यह देखना चाहिए कि लड़कों को लोग गहना क्यों पिन्हाते हैं । कोई समझता है कि उसको पिन्हाने से सब लोग हमको रुपया वाला कहेंगे । कोई कहता है इससे हमारे लड़के अच्छे और गोरे चिट्टे दिखाई देंगे । जिनके पास रुपया नहीं है वह इसलिए अपने लड़के बालों को पिन्हाते हैं कि जो न पिन्हाएंगे तो हमारे भाई और जान पहचान कंगाल कहेंगे । सैकड़ों ने चाहा कि हिन्दुस्तान से^२ यह बुरी रीत छुड़वा दें आज तक कुछ न हो सका ! अभी दिल्ली सैकड़ों

^१ निबन्ध ।

^२ हिन्दुस्तान शब्द पर नाजुकअदा ने एतराज नहीं किया, हालांकि “स्तान” “सता” से फ़ारसी की बू आती है । फ़ारसी शब्दों का बहिष्कार करने वाले हिन्दी लेखक हिन्दुस्थान लिखा करते हैं, यद्यपि बोलने में स्वयं “हिन्दुस्तान” बोलते हैं । हमारी राय में फ़ारसी जुबान खुद संस्कृत से निकली हुई प्राकृत विशेष है—जिसमें इसलामी हमलों के बाद अरबी शब्द मिल गये हैं । पारसियों की छन्द अवस्था की भाषा संस्कृत से कितनी मिलती है; यहाँ दिखाने का अवसर नहीं है । “स्तान” “स्थान”

कोस^१ हैं। बहुत दिन से लोग यह बात चाहते हैं तिस पर आज पहला ही दिन है।

हम सुना करते हैं कि आज उस जगह एक लड़के को किसी ने गहने की लालच से^२ मार डाला। दस बारह दिन हुए इस बस्ती में कोई दो लड़कों को जो गहना पहने थे बहका ले गया। इस कान से सुनते हैं उस कान से उड़ा देते हैं। जिस दिन कोई ऐसी बात सुनते हैं उस दिन तो कुढ़ते हैं। जहां दो तीन घंटे हुए चट भूल जाते हैं। हम यह कभी न मानेंगे कि गहना पिन्हाने से छोटे लड़के आँखों को अच्छे दिखाई देते हैं^३ और जो इसलिये पिन्हाया जाय कि उनके मां बाप रुपया वाले समझे जायँगे, यह भी कुछ ठीक बात नहीं। जो रुपया ही दिखाना है तो यह क्यों न करे कि अच्छे कपड़े पिन्हाये, हर घड़ी लड़कों के साथ कहार या छोकरा रखें। चढ़ने के लिए पालकी हो, टांघन, हाथी का पाठा, छोटी सी बग्घी हो। जो किसी को यह सोच^४

का ही प्राकृत रूप है जिस तरह “हिन्दू” सिन्धु का। इसीलिए “हिन्दुस्तान” तज्जव शब्द को जबरदस्ती तत्सम या अर्द्धतत्सम करके शुद्ध प्रचलित भाषा के गले पर छुरी फेरना है।

^१पंडितजी ने यहाँ “हनोज दिखी दूरस्त” वाली कहावत का अनुवाद कराया है। परन्तु संस्कृत से अनभिज्ञ होने के कारण “दूर” को फ़ारसी समझा और बचने का प्रयत्न किया। परन्तु “दूर” संस्कृत भी है और यहां “दूर” ही लिखना चाहिये था।

^२पंडितजी ने लालच को शायद स्त्रीलिंग माना है। पच्छाहीं इसे पुलिङ्ग बोलते हैं।

^३यहाँ “भले लगते हैं” लिखते तो वाक्य स्वयं सुनने में अच्छा लगता।

^४झगड़ाल की जगह “सोच” लाये, इसीलिये उसे आगे चलकर मिटाने की जरूरत हुई।

रोके तो पचासों बातोंसे मिट सकता है। देखो अङ्गरेज लोग कभी ऐसा नहीं करते। कोई कह तो दे कि हमने अंग्रेजों के लड़कों को कड़े या हंसुली या कोई और गहना पहने देखा। कभी नहीं। वह लोग इन बातों को बहुत बुरा समझते हैं। हां पढ़ाने लिखाने को गहना पिन्धाने से कहीं अच्छा जानते हैं। हम लोगों में भी लड़कों को कड़े और हंसुली और हार पिन्हाते हैं, हिन्दुस्तान में ऐसा ही करते हैं। इधर लड़का हुआ उधर चट उसके कान नाक छेद नकछिदा बना दिया और काला डोरा पिन्हा दिया। फिर थोड़े दिन में चांदी या सोने की बाली पिन्हायी गयी नन्हें नन्हें लड़कों को इससे बड़ा दुख होता है। क्या करें, बोल नहीं सकते तिस पर भी चिल्लाते हैं, चीखते हैं, रोते हैं। जब हम देखते हैं कि दो चार बरस का लड़का सर से पैर तक गहने से लदा है और चल नहीं सकता, कान पक गये, कड़े की चांदी से टखने काले कोयला से हो गये, तो बहुत जी दुखता है! यह कितनी थोड़ी थोड़ी बात है कि गहना पिन्धाने से लड़के घर में रहते हैं कहार छोकरे और कहारियां भी कभी उतार ले जाती हैं। ज्यों आँख चूकी चट जो कुछ गहना मिला लेके चम्पत हुए।

हुस्नारा ने मजमून लिख कर कहा, बहिन, इसमें ४२ सतरें हैं फ्री सतर दो रुपये के हिसाब से ८४) हुए।

नाजुक०। चे. खुश^२ घर घोड़ा नखाश मोल

बहार १। उनके हवाले कर दो। वह खुद गिन लेंगी।

नाजुक०। पहले देखूँ तो शर्त्त पूरी हुई भी।

१“अंग्रेजी” फ़ारसी तो नहीं पर विदेशी शब्द जरूर है। अंग्रेजी भी नहीं हैं। पुर्तगाली भाषा में इंग्लेज़ कहते हैं। अंग्रेज़ जब इस देश में आये, पुर्तगाली यहां पहले से घुलमिल चुके थे। वह इन्हें इङ्गलेज़ कहते थे इसीलिए धीरे धीरे “इङ्गलिशमेन” “अंग्रेज़” कहलाने लगे।

^२क्या खूब।

बहार० । शर्त्त तो ज़रूर पूरी हुई होगी, बहिन ।

नाजुक० । क्या मजाल मैं देखूँ तो सही ।

कमर० । हमको तो यक़ीन है कि पूरी हुई हो ।

बहार० । अच्छा, आओ हम तुम अलग बद दें, नेक एक अशरफ़ी ।

कमर० । मंजूर । लो साहब, हम तो नाजुकअदा की तरफ हैं और यह हुस्नारा की तरफ़ ।

हुस्नारा ने नाजुक अदा को मज़मून दिया और वह पढ़ने लगी ।

नाजुक० । “प्यारी बहनो !” “प्यारी” फ़ारसी नहीं है ?

हुस्नारा० । ऐ कुछ ख़ैर है ! और सुनो ! होश की दवा करो ।

नाजुक० । अच्छा, “रुपया” फ़ारसी है । चलिये अब शर्त्त फ़िस्कहो गयी^१ हम जीत गये, “रुपयाही” इसकी जमा^२ है । फ़ारसी है या नहीं ?

हुस्नारा० । कुछ ख़ैर है ! रुपये का लफ़्ज़ इरानी^३ कलाम में^४ आया है ? वहाँ तो दिनारी दिरम सिक्के हैं ।

नाजुक० । अच्छा यह लफ़्ज़ “कि” क्या है ? काफ़ बयानिया^५

हुस्नारा० । यह हिन्दी फ़ारसी दोनों हैं । आख़िर फ़ारसी है तो इसकी हिन्दी क्या होगी, यह बतलाइये ।

नाजुक० । बहिन ! अल्ला जानता है, बड़ा काम किया । हमें उम्मीद नहीं थी सच तो यह है कि तुम्हारा ही काम है ज़मी तो यह बात हासिल हुई है । यह सब तो अनपढ़ जाहिल^६ हैं जैसे गांव की

^१टूट गयी । ^२बहुवचन । ^३फ़ारसी । ^४वाक्यावली में ।

^५जहाँ कहीं किसी कथन का आरम्भ होता है फ़ारसी में भी ‘कि’ का प्रयोग करते हैं । इसे काफ़ बयानिया (वर्णनात्मक काफ़) कहते हैं । संस्कृत में कथन के अन्त में “इति” से भी काम निकलता है वही फ़ारसी और हिन्दी में “कि” से । यह “कि” वस्तुतः “किम्” से बन गया है, यह प्रश्नसूचक अव्यय है जिसका उत्तर कथन का वाक्य समझा जाना चाहिये । “कि” का मूल संस्कृत है, फ़ारसी नहीं । ^६यज्ञ ।

औरतें वैसे ये । अगर कोई समझती तो जरूर दाद^१ देती । शाबाश
शाबाश^२ ।

सिपेहरारा० । अब रुपये तो गिनिये बाएँ हाथसे ।

बहार० । गिनवालो चेहरेशाही सिक्के ! और कमरबिसा बहिन,
असर्फी निकालो । बदके मुकर जाना अच्छा नहीं होता ।

क्रमर० । वाह, नाजुकअदा, वाह । लेके हरवा दिया ।

नाजुक० । तो बहिन; हमें क्या मालूम था कि ऐसी तेज़ तबीअत
है । इन्होंने तो वह काम किया जो किसीसे न हो सकेगा ।



^१न्यायसे दातव्य । दाद देना उचित प्रशंसा करना । ^२साधु साधु ।
(शाबाश = सुखी रहो)

१३—पं० प्रतापनारायण मिश्र

यह कानपुरके कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। सं० १९१३ की आश्विन शुक्ला नवमीको जन्म हुआ था। पहले अपने पितासे कुछ संस्कृत पढ़ी, फिर स्कूलमें हिन्दी तथा अँग्रेजीकी शिक्षा पाई। साथ ही उर्दू फ़ारसी का भी कुछ अभ्यास किया। कवितामें पं० ललिताप्रसाद त्रिवेदी 'ललित' कविके शिष्य थे। सं० १९४० से इन्होंने ब्राह्मण नामक पत्र निकाला जो सं० १९५० तक चलता रहा। इनका असमय स्वर्गवास १९५१ में ही हो गया।

इनकी हास्यरसमयी कविता बड़ी चुटीली होती थी। गद्यपर इन्हें विचित्र अधिकार था। कहीं कहीं इनकी शैली खासी पण्डिताऊ है और कहीं मीश्रित भी। नीचे जो अवतरण दिया जाता है उसका विषय दार्शनिक है। विषय के अनुकूल भाषा भी पण्डिताऊ है। खेद है कि थोड़ी ही उम्रमें स्वर्गवास हो गया। कोई बड़ा ग्रन्थ लिखनेका मिश्रजीको निर्दयी कालने अवसर न दिया।

मनोयोग

(सुचाल शिक्षासे)

शरीर के द्वारा जितने काम किए जाते हैं उन सबमें मनका लगाव अवश्य रहता है, जिनमें मन प्रसन्न रहता है वही उत्तमताके साथ होते हैं, और जो उसकी इच्छाके अनुकूल नहीं होते वह वास्तवमें चाहे अच्छे कार्य भी हों किन्तु भल्ले प्रकार पूर्ण रीति से सम्पादित नहीं होते, न उसका कर्ता ही यथोचित आनन्द लाभ करता है। इसी से लोगोंने कहा है कि मन शरीर रूपी नगरका राजा है और स्वभाव इसका चञ्चल है। यदि स्वच्छन्द रहे तो बहुधा कुत्सित ही मार्गमें धावमान रहता है। यदि

रोका न जाय तो कुछ काल में आलस्य और अकृत्य का व्यसन उत्पन्न करके जीवन को व्यर्थ एवं अनर्थपूर्ण कर देता है, अतः इसे यत्नपूर्वक दबाए रहना चाहिए अर्थात् जिस बात की इच्छा करे उसके विपरीत ही आचरण रखना चाहिये जिससे यह स्वेच्छाचारी न रहकर वशवर्तिता का अभ्यासी हो। यह रीति हमारी समझ में केवल उन महात्माओं के लिये अत्युत्तम है जिन्होंने संसार से कोई प्रयोजन नहीं रखा, किन्तु जिन्हें जगत के मध्य रहकर प्रशंसनीय जीवन का उदाहरण दिखलाना है उनके पक्ष में राजा को दबाव में रखकर खेदित करना ठीक नहीं है। ऐसा करने से शरीर में स्फूर्ति नहीं रहती जो कर्त्तव्यमात्र का मूल है। अतः इस युक्त के साथ ऐसा बना लेना चाहिये कि प्रत्येक करणीय कार्य में प्रसन्नता-पूर्वक संलग्न हो जाया करे। इसके लिये परम कर्त्तव्य यह है कि इसे दया रहित वा क्लेशित कभी न रहने दे। किसी न किसी उत्तम एवं लाभदायक विचार में प्रतीक्षण लगा ही रखे अर्थात् आवश्यक कर्त्तव्यों की पूर्ति के समय तो प्रत्येक कार्य के प्रत्येक अंश पर भली भाँति ध्यान दे, और जब कोई काम न हो तब कोई सद्ग्रन्थ ऐसा ले बैठा करे जिसमें विचार शक्ति का अवश्य काम पड़ता हो, जैसे गणितशास्त्र और काव्यशास्त्र इत्यादि जिनमें सोचे बिना काम ही नहीं चलता और सोचते हुये आनन्दप्राप्ति की आशा तथा विचार के साफल्य में आनन्द का लाभ भी अवश्य होता है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जो सोच विचार रुचिपूर्वक किये जाते हैं, देह की क्षीणता अथवा चित्त की मलिनता के हेतु कदापि नहीं होते, वरंच दृष्टता तथा पुष्टता सम्पादन करते हैं। इससे इस प्रकार के सोच को समझ कर मन बहलाव की कोटि में गिनना उचित है और जब इससे जो उचटे तब किसी बुद्धिमान के साथ सम्भाषण में संलग्न होना योग्य है जिसका फल प्रायः सभी जानते हैं कि हृदय की संतुष्टि और विचार पुष्टि अवश्य लब्ध होती है इससे भी मन उकताय तो प्रकृति के किसी अंग की वर्तमान दशा देखकर उसके पूर्वा पर कार्यकारणादि की आलोचना कर्त्तव्य है। इन तीनों युक्तियों के उलट फेर से अर्थात्

एक से उच्चाटन उपजे तो दूसरी का अवलम्बन करने से कौतुक प्रिय और प्रसन्न तथा प्रत्येक समय कार्य लग्न रहने का अभ्यास पड़ जायगा, क्योंकि यह तीनों बातें स्वभावतः आनन्द और सहृदयता का उत्तेजन करने वाली हैं हम नहीं जानते वह कैसे लोग हैं जो कहा करते हैं “किसी बात में जी नहीं लगता है।” निश्चय वे जी लगाना जानते ही नहीं, नहीं तो सृष्टिकर्ता ने संसार में ऐसे ऐसे सुयोग्य पात्र स्थापित कर रखे हैं जिनमें चित्त आकर्षण कर लेने की सहज शक्ति है। पुस्तक एक से एक उत्तम अनेकानेक मिल सकती है और यदि न मिलें तो दो ही एक पोथी विचारने के लिये वर्षों सहारा दे सकती हैं। सज्जन भी जहाँ ढूँढ़ो प्रकट वा प्रच्छन्न रूप में मिल ही रहते हैं। अकबर बादशाह का स्वभाव था कि बालकों किसानों और अति सामान्य श्रेणी के ग्रामीणों तक की बातें इस विचार से बड़े दत्तचित्त होकर सुना करते थे कि न जाने किस समय किसके मुख से कौन सी प्रकृतिसिद्धि सुहावनी और शिक्षापूर्ण वार्ता सुनने में आवे। इस धारणा से उक्त नरेश ने बड़ी अनुभवशीलता प्राप्त करली थी। अकस्मात् कभी किसी स्थल पर सज्जन समागम के अभाव की आशंका से मन मार के बैठे रहना उचित नहीं है। चार घर के खेड़े में भी एक आध निरन्तर बुढ़ा ऐसा मिल सकता है जो अनुभव में, अच्छे अच्छे नवयुवक विद्वानों से दो चार बातों के लिये अवश्य श्रेष्ठ होगा। हाँ, जहाँ ढूँढ़ने से भी उपदेश न मिल सके वहाँ उपदेशक पात्रों का तो कहीं अकाल है ही नहीं। सरलता और साधुता के साथ मनुष्यमात्र को सुशिक्षा दी जा सकती है। और एक पुरुष को भी अपने दङ्ग पर ले आने में मन को इतना सन्तोष होता है कि जिसने अनुभव किया होगा उसका जी ही जानता है। सृष्टि विद्या का व्यसन भी ऐसा मनोरम होता है कि यदि एक तुच्छवृत्त की दशा का विचारकर चलिये तो अनुमान शक्ति समभावैगी कि एक किसी बन बाटिका खेत वा मैदान की शोभा का वह अंग रहा होगा। कितने ही साधारण तथा असाधारण व्यक्ति उसे देखने आते होंगे। कितने ही क्षुद्र कीट

एवं पुरुषरत्नोने उस पर विहार किया होगा। कितने ही लुब्धित पशु उसके लिये लालायित होके रह गये होंगे और आज वह कितने ही दैविक दैहिक सुख दुःख देखता हुआ इस दशा को पहुँचा है, तथा अब भी न जाने किसकी आँख में पड़के दुःखका हेतु हो, किस तौर पर जल वा पवन के मध्य नृत्य करे वह कहाँ पर अग्नि के द्वारा भस्म में रूपा-न्तरित हो जाय। ऐसे अनेक पदार्थ जगत में विद्यमान हैं जिन्हें ढूँढ़ने नहीं जाना पड़ता किन्तु विचारने से ज्ञानकी वृद्धि और चित्तको संतुष्टि अवश्य होती है ऐसे निर्दोष कुतूहलों के आलुत^१ जो लोग मन मारे रहते हैं अथवा उसकी प्रसन्नताके लिए कुपथका आश्रय लेते हैं उन्हें भाग्य-हीन वा बुद्धिशत्रुके अतिरिक्त हम नहीं जानते क्या कहना योग्य है ! हाँ, आरंभ में यदि इनके द्वारा सन्तोष न हो तो कुछ दिन यह समझके इच्छा के बिना भी इस मार्ग में पदार्पण करना उचित है कि पहलेपहल सभी सुखदायक कामों में कष्ट जान पड़ता है, स्वादिष्ट भोजन के लिये धुआँ और आँच अथवा धनहानि सहनी पड़ती है। व्यायाममें हाथ पाँव पीड़ित होते हैं। विद्योपार्जन में शिक्षादाताकी ताड़ना अंगीकार करनी होती है, किन्तु परिणाममें मनकी तुष्टि, तनकी पुष्टि, और जीवन की सार्थकता भी निस्सन्देह प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार यदि मन को सुपथगामी बनाने के लिये कुछ दिन अनिच्छा का सामना करना पड़े तो क्या हानि है ? परिणाम में तो लाभ होगा। जब उपयुक्त प्रकार के सद्बिचार में अभ्यास हो जायगा, तब आरंभिक कष्ट परमानन्द में परिवर्तित होनेका पूर्ण विश्वास है, क्योंकि अभ्यास वह गुण है जो वस्तु एवं व्यक्तिमात्र को कुछ ही काल में कुछ का कुछ बना देता है।

अकस्मात्^२ जहाँ पढ़ने लिखने आदि में कष्ट सहते हो वहाँ मनको सुयोग बनाने में भी त्रुटि न करो, नोचेत्^३ दिव्य जीवन लाभ करने में अयोग्य रह जाओगे। इससे सब कर्तव्य की भाँति उपयुक्त विचार का

^१होते हुये। ^२बिना कारण ही। ^३नहीं तो।

अभ्यास भी करते रहना मुख्य कार्य समझो तो थोड़ेही दिनमें मन तुम्हारा मित्र बन जायगा और सर्वकाल उत्तम पथमें विचरण करने तथा उत्साहित रहने का उसे स्वभाव पड़ जायगा, तथा दैवयोग से यदि कोई विशेष खेदका कारण उपस्थित होगा जिसे नित्य के अभ्यस्त उपाय दूर न कर सकें उस दशा में भी इतनी घबराहट तो उपजेगी नहीं जितनी अनभ्यासियोंको होती है, क्योंकि विचारशक्ति इतना अवश्य समझा देगी कि सुखदुःख सदा ही आया जाया करते हैं और अन्त में सभी लोग धैर्य धारण कर लेते हैं। ऐसा न हो तो जगत्के व्यवहार एक दिन न चल सकें। अतः यदि पढ़े लिखे समझदार कहलानेवाले भी साधारण उमुदायकी भाँति चिन्तामग्न हो जायँ तो उनमें और इतरोंमें^१ भेद क्या रहेगा ? इस पर भी यदि तुम यह विचार रखोगे कि दैवी घटना की उपस्थिति के समय जब तक चित्त अपने पुराने ढर्रेपर न आ जाय तब तक उसकी प्रसन्नताके अर्थ गीत, वादित्र, परिभ्रमण, परिहासादि निर्दोष मनोविनोदका आश्रय ले लेना भी सहृदयोंका परम कर्तव्य है, तो फिर कोई सन्देह नहीं है कि तुम्हारा मन तुम्हारे समस्त बुद्धिसङ्गत कामों में प्रसन्नतापूर्वक संलग्न रहना सीख जायगा और असाधारण जीवन के लिये इसीकी परमावश्यकता है।

१४--पं० बालकृष्ण भट्ट

भट्टजी के पूर्व पुरुष अवन्ती या उज्जयिनी के पास रहने वाले मालवीय श्रीगौड़ ब्राह्मण थे। वहाँ से यह वंश मुसलमानी राज्य के अन्त में कालपोके पास आ बसा। भट्टजीके पितामह पं० बिहारी लाल जी प्रयागमें आकर रहने लगे। भट्टजी का जन्म १६०१ के अषाढ़ कृष्ण द्वितीया रविवार को हुआ। मृत्यु ७० वर्ष की अवस्था में सं० १६७१ श्रावण कृष्ण त्रयोदशी सोमवार को हुई। बारह वर्ष की अवस्था तक ननिहाल में रहकर केवल संस्कृत पढ़ी। पिता और चचा चाहते थे कि लड़का व्यापार करे। माता का आग्रह था कि पढ़े। भट्टजी जी ने पैतृक सम्पत्ति से हाथ धोया और ननिहाल में ही विद्याध्ययनमें दत्तचित्त हुए। पंद्रह तक अंग्रेजी शिक्षा पाकर प्रयाग के मिशन स्कूल में अध्यापक हुए। विधर्मियों से मतभेद होने के कारण वह नौकरी छोड़ा और पुनः संस्कृत साहित्य के अनुशीलन में लगे। कुछ दिनों पीछे शिवराखन पाठशालामें तदनन्तर कायस्थ पाठशाला में हेड पण्डित रहे। जब कायस्थ पाठशाला ने कालिज का रूप धारण किया, भट्टजी संस्कृत के प्रोफेसर हो गये। यहां बीस वर्ष से अधिक नौकरी करके सम्राट के और तदनन्तर हिन्दी शब्द सागर के सम्पादक हुए। इसी समय जब काश्मीर में थे सीढ़ी पर से फिसल जाने के कारण साल भर तक पड़े रहे। अन्त में नौकरी छोड़ घर बैठे। नौकरी छोड़ने के साल भरके भीतर ही देहान्त हो गया।

भट्टजी ने जिस समय हिन्दी लिखनी आरंभ की लेखशैली के दो दल प्रसिद्ध थे, एक राजा शिवप्रसाद का दूसरा बाबू हरिश्चन्द्र का। भट्टजी अपने को भारतेन्दु का अनुयायी कहते थे और भारतेन्दु से, पं० राधाचरण गोस्वामी से, पं० प्रतापनारायण मिश्र से पं० श्रीधर पाठक से बाबू बालमुकुन्द गुप्त से समान शीलस्वभाव और लेखशैली को समानताके

कारण बढ़ी मित्रता थी। भट्टजीने पहले कविवचनसुधामें लेख देना आरम्भ किया। पीछे हिन्दीप्रवर्धिनी सभाकी ओरसे भारतेन्दुजीकी प्रेरणासे हिन्दीप्रदीप भाद्रपद संवत् १८३४ से निकलने लगा जिसका सम्पादन पहले अंकसे ही भट्टजीको सौंपा और जिसे भट्टजी ३३ वर्ष तक घाटा सहकर भी निकालते रहे। प्रदीप भट्टजीकी अपनी चीज़ थी। इसमें मौलिक लेखों के सिवा खुशीरकी भर्ती कभी नहीं की गयी। भट्टजीकी हिन्दी भी अपनी ही हिन्दी थी। मुहावरे और रोजमर्रा उनके अपने थे। एक एक वाक्य हृदयके गंभीरभाव लिये निकलते थे। प्रयागकी प्रान्तीयताकी झलक इनकी शैलीमें भद्दापन लाने के बजाय एक विशेष लोच पैदा कर देती है। हास्यरस भट्टजीके गद्यपद्य काव्यका रसविशेष था। भट्टजीके जीवनकी सारी साहित्यिक कमाई हिन्दी प्रदीपकी फाइलों में बन्द है। “जिस बलसे निर्धन मनुष्य भी धनशालियोंका पूज्य है भट्टजीके चरित्रबलकी वह तेजस्विता, वह सत्यप्रियता, वह निष्पापता, वह धैर्य-शीलता, वह मधुरभाषिता, वह विनयमय नम्रता वह क्षमाशीलता ३३ वर्षके हिन्दीप्रदीप में चमक रही है।”

भट्टजी के कई प्रबन्धरत्न प्रदीपके उजालेसे निकालकर साहित्य जगतमें प्रकाशित हो चुके हैं। “सौ अनजान और एक सुजान”, “नूतन ब्रह्मचारी”, “साहित्यसुमन”, “शिष्टादान” प्रकाशित हो चुके हैं। इस संबंधमें जीवनी एवं साहित्यसामग्रीके लिए हम भट्टजी के योग्य पुत्रोंके कृतज्ञ हैं।

चन्द्रोदय

अंधेरा पाख बीता, उजैला पाख आया, पश्चिम की ओर सूर्य डूबा और वक्राकार हँसियाकी तरह चन्द्रमा उसी दिशामें दिखलाई पड़ा। मानों कर्कशके समान पश्चिम दिशा सूर्यके प्रचंड तापसे दुःखी हो क्रोधमें आ इसी हँसियाको लेकर दौड़ रही है और सूर्य भयभीत हो पातालमें छिपनेके लिए जा रहा है। अब तो पश्चिम ओर अकाश

सर्वत्र रक्तमय हो गया। क्या सचमुच ही इस कर्कशा ने सूर्य का काम तमाम किया जिससे रक्त बह निकला अथवा सूर्य भी क्रुद्ध हुआ जिससे उसका चेहरा तमतमा गया और उसी की यह रक्त आभा है? इस्लाम धर्म के मानने वाले नये चन्द्र की बहुत बड़ी इज़्जत करते हैं सो क्यों? मालूम होता है इसीलिये कि दिन दिन क्षीण होकर नाश को प्राप्त होता हुआ चन्द्रमा मानों सबकु देता है कि रमज़ान में अपने शरीर को इतना सुखाओ कि वह नष्ट हो जाय, तब देखो कि उत्तरोत्तर कैसी वृद्धि होती है। अथवा यह श्रोत्रिय ब्राह्मण के नित्य जपने का ओंकार महामन्त्र है; या अन्धकार महाराज के हटाने का यह अंकुश है; या ब्रिहणियों के प्राण कतरने की कैची है।

अथवा, शृङ्गाररस से पूर्ण पिटारे के खोलने की कुञ्जी है, तारा मौक्तिकों से गुथा हार के बीच यह सुमेरु है अथवा जंगम जगतमात्र को डसने वाले अनङ्ग भुजङ्ग के फन पर का यह चमकता हुआ मणि है, या निशा नायिका के चेहरे का मुस्कराहट है, या सन्ध्या नारी के काम केलि के समय में उसकी छाती पर लगा हुआ नखच्चत है, अथवा उग्रजेता कामदेव की धन्वा है या तारा मोतियों की दो सीपियों में से एक सीपी है।

इसी प्रकार दुःख से बढ़ते बढ़ते यह चन्द्र पूर्णता को पहुँचा। यह पूनो का पूरा चाँद किसके मन को न भाता होगा। यह गोल गोल प्रकाश का पिंड देख भाँति भाँति की कल्पनाएँ मनमें उदय होती हैं कि यह क्या निशा अभिसारिका के मुख देखने की आरसी है, या उसके कान का कुंडल अथवा फूल है या रजनीरमणी के लिलार पर बुके का सफ़ेद तिलक है, अथवा स्वच्छ नीले आकाश में यह चन्द्र मानों त्रिनेत्र शिव की जटा में चमकता हुआ कुन्द के सफ़ेद फूलों का गुच्छा है। काम-बल्लभा रति की अटा में कूजता हुआ यह कबूतर है, अथवा आकाश रूपी बाज़ार में तारा रूपी मोतियों का बेचने वाला सौदागर है।

कुई की कलियों को विकसित करते, मुगनयनियों के मान को

समूल उन्मीलित करते, छिटकी हुई चाँदनीसे सब दिशाओं को धवलित करते अन्धकार को निगलते चन्द्रमा सीढ़ी दर सीढ़ी शिखर के समान आकाश रूपी विशाल पर्वत के मध्य भाग में चढ़ा चला आरहा है। क्षपा तमस्कांड का हटाने वाला यह चन्द्रमा ऐसा मालूम होता है मानो आकाश महा-सरोवर में श्वेत कमल खिल रहा है। उसमें बीच बीच जो कलङ्क की कालिमा है सो मानो भौंरे गूँज रहे हैं। अथवा, सौन्दर्य की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी के स्नान करने की यह बावड़ी है, या काम-देव की कामिनी रति का यह चूना पोता धवल गृह है, या आकाश गंगा के तट पर विहार करनेवाला हंस है जो सोती हुई कलियों को जगाने को दूत बनकर आया है, या देवन्दी आकाश गंगा का पुण्डरीक है, या चाँदनी का अमृतकुंड है, अथवा आकाश में जो तारे देख पड़ते हैं वे सब गौएँ हैं उनके भुँड में यह सफ़ेद बैल है, या हीरे से जड़ा हुआ धूर्व दिगंगना का कर्णफूल है; या कामदेव के बाणों को चोखा करने के लिए सान करने का सफ़ेद गोल पत्थर है या संध्या नायिका के खेलने का गेंद^१ है।

इसके उदय के पहले सूर्यास्त की किरणों से सब ओर जो ललाई छा गयी है सो मानों फागुन में इस रसिया चन्द्र ने दिगंगनाओं के साथ फाग खेलने में अभीर उड़ाई है, वही सब ओर आकाश में छाया हुई है। अथवा निशा योगिनी ने ताराप्रसून-समूह से कामदेव की पूजाकर यावत कामीजनों को अपने बस में करने के लिये छिटकती हुई चाँदनी के बहाने बशीकरण किया है, अथवा स्वच्छ नीले जल से भरे आकाश हौदा में काल महागणक ने रातके नापने को एक घटियन्त्र छोड़ रक्खा है अथवा जगद्विजयी राजा कामदेव का यह श्वेत छत्र है, वियोगी मात्रकों कामाग्नि में भुलसाने को यह दिनमणि है, या कन्दर्प-सीमन्तिनी रतिदेवी की छुप्पेदार कर्धनी का टिकड़ा है, या सब कारीगरों का सिरताज आत-

^१ भट्ट जी गेंद को संभवतः पुर्विखग लिखते थे। स्त्रीखिग चाहिए।

शबाज़ की बनाई हुई चरखियों का यह एक नमूना है, अथवा महापथ गामी समयराज के रथ के सूर्य और चन्द्रमा रूपी दो पहियों में से यह एक पहिया है जो चलते चलते बिस गयी है इसी से बीच में कलाई^१ देख पड़ती है, अथवा लोगों की आंख और मनको तरावट और शीतलता पहुँचाने वाला यह बड़ा भारी बर्फ का कुण्ड है, इसी से वेदों ने परमेश्वर के विराट वैभव के वर्णन में चन्द्रमा को मन और नेत्र माना है, या काल खिलाड़ी के खेलने का सफ़ेद गेंद है जिसमें समुद्र के नीले पानी में गिरने से सूखने पर भी कहीं कहीं नीलिमा बाकी रह गई है या तारे रूपी मोती-चूर के दानों का यह बड़ा भारी पनसेरा लड्डू है अथवा लोगों के शुभा-शुभ कर्म का लेखा लिखने के लिये बिल्लोर की गोल दवात है या खड़िया मिट्टी का बड़ा भारी ढोका है, या काल खिलाड़ी की जेबी घड़ी का डायल है, या रजतका कुण्ड है या आकाश के नीले गुम्बज में यह संगमरमर का गोल शिखर है। शिशिर और हेमन्त में हिम से जो इसकी द्युति दब जाती है सो मानो यह तपस्या कर रहा है जिसका फल यह चित्रा की संयोग से शोभित चैत्र के पूर्णों के दिन पावेगा, जब इसकी द्युति दामिनी सी फिर दमकेगी।

आँसू

मनुष्य के शरीर में आँसू भी गड़े हुए खज़ाने के माफ़िक है। जैसे कभी के कोई नाजुक वक्त आ पड़ने पर संचित पूंजी ही काम देती है उसी तरह हर्ष, शोक, भय, प्रेम इत्यादि भावों को प्रकट करने में जब सब इन्द्रियाँ स्थगित होकर हार मान बैठती हैं तब आँसू ही उन भावों को प्रकट करने में सहायक होता है। चिरकाल के वियोग के उपरान्त जब किसी दिली दोस्त से मुलाकात होती है तो उस समय हर्ष और प्रमोद के उफान में अङ्ग अङ्ग ढीले हो जाते हैं वाष्पगद्गद

^१कालापन। लखाई, बोझते हैं पर “कलाई” का प्रयोग और कहीं नहीं देखा।

कंठ रुँध जाता है, जिह्वा इतनी शिथिल पड़ जाती है कि उससे मिलने की खुशी को प्रगट करने के लिए एक एक शब्द मानो बोझ सा मालूम पड़ता है। पहले इसके कि शब्दों से वह अपना असीम आनन्द प्रकट करे सहसा आँसू की नदी उसकी आँख में उमड़ आती है और नेत्र के पवित्र जल से वह अपने प्राणप्रिय को नहलाता हुआ उसे बगल-गीर करने को हाथ फैलाता है। सच्चे भक्त और उपासक की कसौटी भी इसी से हो सकती है। अपने उपास्य देव के नामसंकीर्तन में जिसे अश्रुपात न हुआ, मूर्ति का दर्शन कर प्रेमाश्रुपात से जिसने उसके चरण कमलों का अभिषेक न किया; उस दाम्भिक को भक्ति के आभास-मात्र से क्या फल ? सरल कोमल चित्तवाले अपने मनोगत सुख दुःख के भाव को छिपाने की हज़ार हज़ार चेष्टा करते हैं कि दूसरा कोई उनके चित्त की गहराई को न पा सके पर अश्रुपात भावगोपन की सब चेष्टा को व्यर्थ कर देता है, मोती सी आँसू की बूँदें जिस समय सहसा नेत्र से झरने लगती हैं उस समय उसे रोक लेना बड़े बड़े गम्भीर प्रकृति वालों की भी शक्ति के बाहर होता है। भवभूति ने, जिनको प्रकृति का चित्र अपनी कविता में खींच देना खूब मालूम था, कई ठौर अश्रुपात का बहुत उत्तम वर्णन किया है, जिसमें यही आशय निकलता है।

यदि सृष्टिकर्त्ता अत्यन्त शोक में अश्रुपात को प्राकृतिक न कर देता तो बज्रपातसम दारुण दुःख के वेग को कौन सम्हाल सकता है। इसी भावार्थ का पोषक भवभूति का नीचे का यह श्लोक बहुत उत्तम है।

पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया ।

शोकस्रोमे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते ॥

अर्थात् बरसात में तालाब जब लबालब भर जाता है तो बाँध तोड़ उसका पानी बाहर निकाल देना ही सुगम उपाय बचाव का होता है। इसी तरह अत्यन्त शोक से क्षोभित तथा व्याकुल मनुष्य को अश्रुपात ही हृदय को विदीर्ण होने से बचा लेने का उपाय है। बल्कि ऐसे समय रोना ही रहता है।

कोई शूरवीर, जिसको रणचर्चा नाममात्र सुन जोश आ जाता है और लड़ाई में गोली तथा वाणकी वर्षाको फूलोंकी वर्षा मानता है, वीरता के उमंग में भरा हुआ युद्धयात्राके लिये प्रस्थान करनेको तैयार है। विदाई के समय विलाप करते हुए अपने कुनबेवालोंके आँखोंकी एक एक बूँदकी क्या कीमत है यह वही जान सकता है। वह शशोपंज में पड़ आगे पाँव रख फिर हटा लेता है। वीर और कसणा दो विरोधी रस अपनी अपनी ओर से उमड़ उमड़ देरतक उसे किंकर्तव्यताविमूढ़ किये रहते हैं। आँखमें आँ : उन्हीं अकुटिल सीधे सत्पुरुषोंके आता है जिनके सच्चे सरल चित्त में कपट और कुटिलाई ने स्थान नहीं पाया है। निटुर निर्दयी मक्कारकी आँखें, जिसके कट्टर कलेजेने कभी पिघलना जाना नहीं, दुनिया के दुःखपर क्यों पसीजेंगी।

प्रकृति ने चित्तका आँखके साथ कुछ ऐसा सीधा सम्बन्ध रच दिया है कि आँख चित्त वृत्तियोंको चट पहचान लेती है और तत्काल तदाकार अपनेको प्रगट करनेमें देर नहीं करती। तो निश्चय हुआ कि जो बेकलेजे हैं उनकी बैलसी बड़ी बड़ी आँखें केवल देखनेहीको हैं, चित्तकी वृत्तियोंका उनपर कभी असर होता ही नहीं। चित्त के साथआँख के सीधे सम्बन्धको विहारी कविने कई दोहोंमें प्रकट किया है, यथा—

कोटि जतन कीजै तऊ, नागरि नेह दुरै न।

कहे देत चित चीकनो, नयी रूखाई नैन ॥

दहैं निगोढ़े नैन ये, गहैं न चेत अचेत।

हौं कसि कै रिसको करों, ये निरखत हँसि देत ॥

मृतकके लिये हज़ारों लाखों खर्च कर आलीशान रौज़े, मक़बरे, क़ब्रें, संगमरमर या संगमूसा की बनवा देते हैं, कीमती पत्थर मानिक, ज़मुरदसे उन्हें आरास्ता करते हैं पर वे मक़बरे क्या इसकी रूहको उतनी राहत पहुँचा सकते हैं जितनी उसके दोस्त आँखोंके क़तरे टपका कर पहुँचाते हैं !

इस आंसूमें भी भेद है। कितनोंका पनाला^१ कपार होता है, बात कहते रो देते हैं। अन्तर उनके मुखसे पीछे निकलेगा, आंसुओंकी झड़ी पहले शुरू हो जायगी। स्त्रियोंको जो बहुत आंसू निकलता है, मानों रोना उनके पास गिरो^२ रहता है, इसका कारण यही है कि वे नाम ही से अबला और अधीर हैं। दुःख के वेगमें आंसूको रोकनेवाला केवल धीरज है उसका टोटा यहाँ हरदम रहता है तब इनके आंसूका क्या ठिकाना ? सत्यशाली धीरजवालोंको आंसू कभी आता ही नहीं। कड़ी से कड़ी मुसीबत में दो-चार कतरे आंसूके मानो बड़ी बरकत है। बहुत मौकों पर आंसुओंने गजब कर दिया है। सिकन्दरका कौल था कि अपनी मां की आँखके एक कतरा आंसूकी क्रोमत्त मैं बादशाहतसे भी बढ़कर मानता हूँ, रेणुका के अश्रुपातही ने परशुरामसे इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार कराया। कितने ऐसे लोग भी हैं जिन्हें आंसू नहीं आता। इसलिये प्याज का गट्टा पास रखना बड़ी सहज तरकीब निकाली गयी है। जहाँ पर बड़ी जरूरत आंसू गिराने की हो तो उनके लिए प्याज ज़रासा आँख में छू जाने से आंसू गिरने लगता है।

“किसी की बैगन बावले^३ किसी को बैगन पथ”

बहुधा आंसू का गिराना भलाई और तारीफ़में दाखिल है। हमारे लिये आंसू बड़ी बला है। नज़ले का ज़ोर है दिन रात आँखोंसे आंसू टपकता रहता है, ज्यों ज्यों आंसू गिरता है त्यों त्यों बीनाई^४ कमजोर होती जाती है, सैकड़ों तदबीरों कर चुके, आंसूका टपकना बन्द न हुआ। क्या जाने बङ्गाल की खाड़ीवाला समुद्र हमारे ही कपारमें आकर भर रहा है। आँखोंसे तो आंसू चला ही करता है आज हमने लेखमें भी आंसू ही पर कलम चला दी^५ पढ़नेवाले इसे निरी नहूसत की अलामत^६ न मान हमें क्षमा करेंगे।

^१पानी से भरा। ^२गिरवीं। ^३बात या बाई उत्पन्न करनेवाला।

^४इष्टि। ^५कलम को अधिकांश लेखक पुस्तिक ही लिखते हैं। “कलम तोड़ दिया” कहते हैं, “कलम तोड़ दी” नहीं। ^६अशुभके लक्षण।

१५-पं० रामशङ्कर व्यास

जन्म काशी में सम्वत् १६१७ में हुआ था। मृत्यु १६७३ में हुई। आप बा० हरिश्चन्द्र के अन्तरङ्ग मित्रों में थे। कई वर्ष तक 'कविवचन-सुधा' और फिर आर्यमित्र का सम्पादन करते रहे। बा० हरिश्चन्द्र को 'भारतेन्दु' की उपाधि देने का प्रस्ताव इन्होंने पहले किया था। हिन्दी गद्य के बड़े चोज के लेखक थे। खगोलदर्पण, वाक्यपञ्चाशिका, नेपोलियन की जीवनी, बात की करामात, मधुमती, बेनिसका बाँका, चन्द्रास्त, नूतनपाठ, राय दुर्गाप्रसाद की जीवनी आदि अनेक ग्रन्थ व्यासजी ने रचे। अन्त में जौनपुर के राय दुर्गाप्रसाद की रियासत के मैनेजर थे। उनकी 'बात की करामात' से कुछ अवतरण नीचे दिया जाता है। इस अंश में अपने शब्दों के दो अर्थों में प्रयुक्त होने के ही कारण शायद खेपाखकार मान लिया है। हमारी राय में शब्दों का ऐसा प्रयोग मुद्राऽखकार समझा जाना चाहिये।

आभूषण का श्लेष

आप लोगों को उचित है कि परिश्रमरूपी कङ्कन बाँधकर विद्या जो परम सुन्दरी बाबा है उसे अपने अधीन करें। मूर्खों के छन्द बन्द से बचने के लिए और कोई सुगम उपाय नहीं है। जो तुम में विद्या होगी तो औरों को भी अनन्त लाभ पहुँचा सकोगे। जो तुम्हें इस समय चुटकी में उड़ाते हैं वे तुम्हारे विद्वान होने पर स्वयं हार मान बैठेंगे। विद्या का प्रताप बड़ा कड़ा है। यह किसी का तोड़ा टूट नहीं सकता। विद्या से लोगों की कीर्ति देश देशान्तरों में जा पहुँची है। विद्वान कभी

किसी से नहीं छुड़ा जा सकता है। विद्वान गजेन्द्र की तरह झूम झूम के समर विजयी होता है विद्वान के आगे मूर्खों की धुकधुकी बैठ जाती है और उनके सामने उनका तेज जुगुनु की नाई मन्द पड़ जाता है। यह बात सब पर विदित है कि धनी का सम्मान सब स्थान में होता है, परन्तु विद्वान को कर धनी लोग भी देते हैं। विद्वान् जो बात कहेगा वह सटीक निकलेगी। मनुष्य विद्या यन्त्र से सब को वशीभूत कर लेता है। पण्डित की सब लोग बन्दी की भाँति प्रशंसा करते हैं। विद्वान पुरुषों में मात्ता के सुमेर की तरह शोभा पाता है और सब से अधिक गुण इसमें यह है कि वह औरों के अवगुण गोप कर देता है। विद्या से कितने लाभ होते हैं इसका किसी को पता नहीं चला। विद्या दोष गुण दिखलाने को स्वच्छ आरसी है इसे खूब समझ लो और जहाँ तक हो सके इसके सीखने का यत्न करो।

पान का श्लेष

काव्यरस पान करने में जो आनन्द है सो किसी में नहीं। सच पूछो तो सत्यकाव्य की कथा ऐसी सुहावनी होती है कि उससे तृप्ति नहीं होती। मैं अपना हाल क्या लिखूँ। जब कभी बँगला में बैठकर काव्य देखने लगता हूँ, तो प्रफुल्लित गात होकर संसार के और सब सौदे को फीका समझता हूँ और जहाँतक अनुभव हुआ है उससे यही कहना पड़ता है कि जो कुछ ब्रह्मानन्द है इस मगही में है। काव्यरस ने समस्त अन्य रसों को चूर्ण कर डाला। मुझे इसके आगे स्वर्गानन्द भी तुच्छ जान पड़ता है। साँची यही है कि इसने सब को हरा दिया है। यों तो सभी काव्य को चबाचबाकर पढ़ते हैं, पर उसका लगाना बड़ी सुरतिका काम है क्योंकि उसमें अलङ्कार की बड़ी फेरफार रहा करती है। अन्य रसों से काव्य रस में उतना ही अन्तर है कि जितना काक और पिक में समझा जाता है और सब से बढ़कर बात तो यह है कि वह सद्यः फलीभूत है।

वस्त्रका श्लेष

सूतजी पुराणके बड़े भारी बक्ता हुए, जिन्होंने ज्ञानसे अठारहो पुराण कह डाले । हमारे यहाँ की विद्या और विद्वानोंको देखकर दूसरे देशवाले हाथ मलमल रह जाते हैं । वास्तवमें पूछिये तो हमारा धर्म सनातनिक और दूसरोंका जान्नी ठहरता है । शास्त्रावलोकनसे जो नयनसुख होता है वह अकथ है, परन्तु उनके तत्त्वको उलझो हुई गौँठ समझो, विचारमें धूपछाँह का मज़ा दिखाई देता है, बहुत लोग इसे ताश खेल बतलाते अर्थात् जितना ही फैलायेंगे उतना ही अधिक उसका आनन्द उठावेंगे । मूर्ख तथा नवशिक्षित लोग चाहे जितना मिथ्यापवाद लगायें, पर हमारे धर्ममें दोषकी छोटमात्र नहीं है । बड़े बड़े मतावलम्बी आये, किन्तु भारतवालोंने सबोंको धुस्से लेकर धजियाँ उड़ा डालीं । दूसरोंका धर्म अच्छी बराबर और अपना रुपया बराबर समझना मुख्य धर्म है । यह खूब समझलो कि हमारा मत बड़ा गाढ़ा है । विदेशीकी क्या सामर्थ्य जो इसकी तूल कर सकें । बिना अधिक मनन किये क्या कोई इसका विस्तार पा सकता है ।

फलोंका श्लेष

एकाकी बेज बड़ाओ तो सुखके मीठे फलका स्वाद चक्खो क्योंकि आपसका बैर बड़ा हानिकारक होता है । आज दिन भारतवासी जो फूटके अमली न होते तो अनारी क्यों कहवाते । भारतवासी व्यसन कम रखते तो इसका रसाज्ज वंश-शाखा क्यों नाश पाती । आर्य-सन्तान संस्कृत विद्यामें परिश्रम करते तो बी उर्दू शरीफाकी करतूत क्यों फैलती । हमारे भारतवासी साहसी और उद्यमी होते तो वहाँकी हरी भरी फूली फली भूमिकी यह दशा क्यों होता । लोगोंको किसमिससे उपदेश दिया जाय कि उनकी आंखें खुलें और इस देश में कमला अपनी नवरी छविसे आकर पुनर्वास करें । यदि यहाँवाले विद्याकी वृद्धिपर ध्यान दें तो सब कुछ है नहीं तो यह अकेला जन्मभर पिसता रहेगा ।

चौसर का श्लेष

वेश्याएँ प्रायः मनुष्य को प्रेमका जाल बिछाकर वशमें कर लेती हैं । बाजी वेश्याएँ तो ऐसा दाँव खेलती हैं कि घर बार कुछ नहीं रह जाता । जो कोई उनके पंजेमें पड़ता है, उसके छक्के छूट जाते हैं । जहाँ कोई दैवका खाल इनके रंगमें रंगा कि साथ ही बदरंग हुआ । इनकी कच्ची बातोंमें फँसा कि उनके गलेकी हार हुई । मैं जहाँ तक समझता हूँ इनकी बातपर कदापि विश्वास न करना चाहिए; क्योंकि इनकी गोटी जमने भरकी देर है, जहाँ जमी कि साथ ही बढ़कर हाथ मारा । इनके फेरमें वही लोग आते हैं कि जो कच्चे हैं और जो लोग सयाने हैं वे कभी पास नहीं आते । इस युगमें पौषारह उसीके हैं कि जो इनसे दूर रहे । मैं तो ईश्वरसे सदा यही दुआ मांगता हूँ कि वह सब लोगोंको इस आपत्तिसे बचावे, नहीं उनको जीते हुए मौत आगे खड़ी है ।

१६-बा० बालमुकुन्द गुप्त

जन्म सं० १९२२ में जिला रोहतक में हुआ। मृत्यु १९६४ में हुई। फ़ारसी उर्दू के बड़े अच्छे विद्वान थे। आरम्भ में लाहौर के कोहनूर नामक उर्दू पत्र के उपसम्पादक थे। लखनऊ से निकलने वाले “अवधपञ्च” के ख़ास नामानिगारों में थे। मजाक के उस्ताद थे। पं० प्रतापनारायण मिश्र के प्रभाव से विशेषतः इन्हें हिन्दी का अनुराग हुआ। बड़ी जल्दी हिन्दी सीखी और कालाकांकरके “हिन्दुस्तान” के सम्पादकीय विभाग में काम करने लगे। पीछे “हिन्दी वङ्गवासी” के सम्पादक हुए और भारत-मित्र की सम्पादकता में जीवन शेष किया। रत्नावली नाटिका, शिवशम्भु-का चिट्ठा, हरिदास, समाचार पत्रों के इतिहासादि इनकी रचनाएँ लोक-प्रिय हैं।

गुप्तजी की समालोचना बड़ी मारके की होती थी। उर्दू की लेखशैली की बरीकियों से परिचित गुप्तजी जैसे लेखकों से हिन्दी गद्य का बड़ा उपकार हुआ है। खेद है कि असमय मृत्यु ने हिन्दीसंसार को गुप्तजी की अधिक सेवा से वंचित कर दिया।

अखबार

हिन्दी के अखबारों के विषय में कुछ विशेष आलोचना करने का विचार जीमें आने से पहलेही उर्दू अखबारों की ओर दृष्टि जाती है क्योंकि उर्दू के अखबार हिन्दी से पहले जारी हुए हैं और उन्होंने हिन्दी अखबारों के पहले तरफ़ी के मैदान में क़दम आगे बढ़ाया है। ऊपर से देखिए तो उर्दू और हिन्दी में इस समय अनबन है। उर्दू के तरफ़दार हिन्दी-वालों को और हिन्दी के पक्षवाले उर्दू वालों को कुछ टेढ़ी दृष्टि से देखते हैं, पर वास्तव में हिन्दी उर्दू का बड़ा मेल है। यहाँ तक कि

दोनों एक ही वस्तु कहलाने के योग्य हैं, केवल फ़ारसी जामा पहने से एक उर्दू कहलाती है और देवनागरी वस्त्र धारण करने से दूसरी हिन्दी।

अंग्रेज़ी सरकार ने अपना अमल भारत में जमाकर भारत की भाषा का ईरानी लिबास^१ पसन्द किया। उसी लिबास से भारत की भाषा अंग्रेज़ी अदालतों में पहुँची। पञ्जाब और पश्चिमोत्तर प्रदेश की अदालतों की भाषा उर्दू ठहरी। अदालतों की भाषा होने से पहले ही उर्दू पर अंग्रेज़ों की दृष्टि पड़ चुकी थी इस बात को आज सौ साल से अधिक हो गये। उस समय उर्दू में गद्य पुस्तकें लिखने का ढङ्ग जारी हो गया था। उर्दू गद्य की सब से पहली पुस्तक सं० १८५५ वि० में बनी। मीरअम्मन की प्रसिद्ध “बागोबहार” नामकी पोथी सं० १८५६ वि० में बनी। उसके एक ही साल पीछे लल्लुलाल जी का प्रेमसागर बन गया। सरकारी दफ्तर सं० १८९२ वि० में उर्दू होने आरम्भ हुये थे। सं० १८९३ में अखबारों को स्वाधीनता मिली।

सं० १८६० में उर्दू का पहला अखबार दिल्ली में जारी हुआ उसका नाम मालूम नहीं क्या था। लाहौर के गवर्नमेंट कालेज के अरबी भाषा के प्रोफ़ेसर मौलवी मुहम्मद हुसेन आज़ाद दिल्ली निवासी ने अपनी “आबेहयात” नाम की पोथी में केवल इतना लिखा है कि उर्दू का पहला अखबार दिल्ली से मेरे पिता के कलम से निकला। जान पड़ता है कि उक्त अखबार बहुत दिन चला नहीं, इसी से प्रोफ़ेसर आज़ाद ने उसका कुछ विशेष उल्लेख नहीं किया। वह अखबार अब तक जारी रहता तो ६७ साल का होता। उसके बाद कोई और उर्दू अखबार निकला या नहीं कुछ पता नहीं।

उक्त पत्र में राजनीति समाजनीति आदि के लेख नहीं निकलते थे जैसे कि आजकल के समाचार पत्रों में निकलते हैं। उर्दू के विद्वान् और कवि लोगों के वादानुवाद और कविता संबंधी बातें उसमें छुपती थीं।

^१कपड़ा, आवरण।

इतने पर भी बड़े बड़े अंग्रेज़ हाकिम उसे अस्सी और अड़तालिस अड़तालिस रुपये वार्षिक देकर ख़रीदते थे । इसके पीछे फुलिस्केप आकार के १६ पृष्ठ पर आगरे से “मुफ़्तीदे ख़लायक” नाम का एक अख़बार निकला । वह कई वर्ष तक जारी रहा । उसमें ख़बरें निकलती थीं, भारत के इतिहास के दो पृष्ठ उसमें निकलते थे । इसके सिवा उर्दू के कवियों की ग़ज़लें और दूसरी चीज़ें उसमें छपती थीं । इससे यह अख़बार भी ठीक ठीक अख़बार कहने के योग्य न था ।

सं० १६०७ में लाहौर से “कोहनूर” नाम का एक साप्ताहिक उर्दू पत्र निकला । यह उर्दू का असली पत्र कहलाने योग्य हुआ । दस साल हुए काशी निवासी बाबू श्रीराधाकृष्णदास ने हिन्दी अख़बारों के विषय में एक छोटी सी पुस्तक लिखी थी । उसमें उन्होंने दिखाया है कि हिन्दी में सब से पहले राजा शिवप्रसाद की सहायता से सं० १९०२ वि० में “बनारस अख़बार” निकला । उक्त पत्र लीथो में रही के कागज़ पर छपता था । एक महाराष्ट्रीय सज्जन गोविन्द रघुनाथ यत्ते उसके सम्पादक थे । उसका मोटो यह था—

सुबनारस अख़बार यह, शिवप्रसाद आधार ।

बुद्धि विवेकजन निपुन को चित्तहित बारम्बार ॥

गिरजापति नगरी जहाँ, गङ्गा अमल जल धार ।

नेत शुभाशुभ मुकुर को, लखो बिचार बिचार ॥

उसकी भाषा का भी एक नमूना उक्त पोथी में दिखाया गया है । वह इस प्रकार है—

“यहाँ जो नया पाठशाला कई साल से जनाब कप्तान किट साहब बहादुर के इहतिमाम और धर्मात्माओं के मदद से बनता है उसका हाल कई दफा जाहिर हो चुका है, अब वह मकान एक आलीशान बन्दे का निशान तैयार हर चेहार तरफ से हो गया बल्कि इसके नक़्शे का बयान पहिले मुन्दर्ज है सो परमेश्वर के दया से साहब बहादुर ने बड़ी तन्देही मुस्तैदी से बहुत बेहतर और माकूल बनवाया है । देखकर लोग

उस पाठशाला के किते के मकानों को खूबियाँ अकसर बयान करते हैं और उसके बनने से खर्च का तजवीज़ करते हैं कि जमा से ज्यादा लगा होगा और हर तरह से लायक तारीफ़ के है सो यह सब दानाई साहब ममवूह की है खर्च के दूना लगावट में वह मालूम होता है ।”

महाराज काशीराज के शिक्षागुरु मुंशी शीतलसिंह साहब ने इसकी भाषा पर एककृता^१ लिखकर दिल्ली की थी । वह कृता इस प्रकार है—

बनारस में एक जो बनारसगज़ट है ।

इबारात सब उसकी अजब उटपट है ॥

मुहरिर् बिचारा तो है बासलीका ।

बले क्या करै वह कि तहरीरे भट है ॥

इस कृते से यह पता नहीं लगता कि मुन्शी साहब ने “बनारस अखबार” की इबारात की किस लिए दिल्ली की । उर्दू में दो एक शब्द संस्कृत के मिला देने के लिए की या विशुद्ध हिन्दी न लिखने के लिए की अथवा सम्पादक के लिंगज्ञान पर की । हमारी समझ में सम्पादक बहुत दोषी नहीं । एक तो वह दक्षिणी थे । दूसरे उस समय तक हिन्दी का कोई ऐसा नमूना मौजूद न था जिसके अनुसार वह लिखते और उनकी भाषा उर्दू न कहलाकर हिन्दी कहाने के योग्य होती ।

यह ठीक है कि श्रीलल्लूलालजी के प्रेमसागर की भाषा उनके लिए आदर्श हो सकती थी । पर लल्लूजी के परिश्रम की ओर किसीने ध्यान नहीं दिया । उनकी भाषा उनकी पोथी ही में रह गयी आगे और पोथियाँ लिखकर किसीने उनकी चलाई हुई भाषा की उन्नति नहीं की । लल्लूजी ने उर्दू वालों के साथ साथ प्रेमसागर लिखकर हिन्दी में गद्य लिखने की रीति चलायी । दुःख की बात है कि उर्दू की उन्नति तो होती

^१पद्यांश । दो या अधिक द्विपदियों के समूह को जिसमें गजल आदि के नियमों का पाखन आवश्यक नहीं है अथवा जो किसी राजख कसीदे या मसनवी का एक खण्ड हो सकता है, कृता कहते हैं ।

रही पर हिन्दी की कुछ न हुई। लल्लूजीके प्रेमसागरकी भांति दस पांच और पोथियाँ हिन्दीमें लिखी जातीं तो “बनारस अखबार” को हिन्दी लिखनेका एक अच्छा मार्ग मिलता पर लल्लूजी के बाद कोई साठ सालतक उस ओर ध्यान नहीं दिया गया। अन्त को स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्रजीने मरी हुई हिन्दीको फिरसे जिलाया।

जिस प्रकार गद्य लिखनेकी नींव आधुनिक हिन्दीमें उर्दू गद्यसे दो-एक साल ही पीछे पड़ी वैसे ही समाचारपत्रकी नींव भी दो-चार साल बाद ही पड़ गयी थी। पर दुःख यह है कि उसकी मज़बूतीकी ओर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया। लाहौरसे उर्दूका “कोहेनूर” सं० १६०६ में निकला था उसी साल काशीसे “सुधाकर” नामका हिन्दी-पत्र तारा-मोहन मित्र नामी एक बंगाली सज्जनके द्वारा प्रकाशित हुआ। कोहेनूर बहुत दिन तक भली भाँति चला और अबतक भी उसका अस्तित्व एकदम मिट नहीं गया है पर “सुधाकर” बहुत दिन नहीं रहा। हाँ एक यादगार उस पत्रकी काशीमें बहुत भारी है जिसके द्वारा ज्योतिष और संस्कृत भाषाके सिवा हिन्दीका बहुत कुछ उपकार हुआ और होता है। वह काशीके प्रसिद्ध जोतिषिद महामहोपाध्याय पण्डित “सुधाकर”, द्विवेदी हैं,^१ आपके चाचाजीके हाथमें ज्योंही डाकियेने ‘सुधाकर’ पत्रका पहला नम्बर लाकर दिया त्योंही घरके भीतर से उनको भतीजा होनेकी खबर मिली। आपने भतीजेका नाम उस पत्रके नामपर सुधाकर रक्खा। सुधाकर पत्रकी कोई संख्या हमने नहीं देखी और न उसकी भाषाहीका कुछ नमूना हमें मिला। यदि मिलता तो अच्छा होता, क्योंकि यह जाननेकी बात है कि लल्लूजीसे एकदम ४८ साल बाद जो हिन्दी लिखी गयी वह किस ढङ्गकी थी।

कवि-वचन-सुधा

अन्तको स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्रजीके समयमें हिन्दीके भाष्यने

^१ कई वर्ष हुये सुधाकरजीका देहान्त हो गया।

पलटा खाया। उन्होंने हिन्दीको उत्तम बनानेकी चेष्टा की। कई एक अच्छी अच्छी पोथियाँ लिखकर उन्होंने सुन्दर हिन्दीका एक नमूना खड़ा किया। फिर और लगातार कई पुस्तकें लिखकर उसको पुष्ट किया। यद्यपि स्वर्गीय राजा लक्ष्मणसिंह महोदय ने सं० १६२० वि० में शकुन्तलाका हिन्दी अनुवाद करके फिर एक अच्छी हिन्दीका नमूना उपस्थित किया था पर उसका उस समय अधिक प्रभाव नहीं हुआ। कहा जा सकता है कि हिन्दी नहीं थी बाबू हरिश्चन्द्रने उसे पैदा किया। यदि हिन्दी होती तो राजा शिवप्रसाद नागरी अक्षरोंके बड़े प्रेमी होकर उर्दूमें क्यों उलझे रहते ?

हिन्दीका एक उत्तम रूप खड़ा होते ही बाबू हरिश्चन्द्रजीको अखबार का ध्यान आया। इसीसे सं० १६२५ में उन्होंने कवि-वचन-सुधा मासिक पत्रके आकारमें निकला। उसमें उस समय प्राचीन कवियोंका काव्य प्रकाशित होता था। कवि देवका अष्टयाम; दीनदयालु गिरिका अनुराग बाग, चन्द्रका रासो, मलिक मुहम्मदकी पद्मावत, कबीरकी साखी, बिहारीके दोहे, गिरधरदासका नहुष नाटक, गुलिस्ताँका अनुवाद आदि पुस्तकें उसमें छपने लगीं। संसारमें सदा पद्यहीसे अच्छी भाषाओं के गद्यसाहित्यका जन्म होता है। उन्हें गद्यकी सुधि आगयी उन्होंने देखा कि गद्यमें भारतके सब प्रान्त बढ़ रहे हैं। केवल हिन्दीवाले ही बेसुध हैं। इतना विचार आते ही उन्होंने कवि-वचन-सुधाको पाक्षिक और फिर साप्ताहिक किया। राजनीति समाजनीति आदिपर लेख लिखने आरम्भ किये। उसका सिद्धान्तवाक्य यह था—

“खल्लगननसों सज्जन दुखी मत होहिं, हरिपद मति रहैं ॥

अपधर्म छूटै, स्वस्वनिज भारत गहै, करदुख बहैं ॥

बुध तजहिं मत्सर, नारिनर सम होहिं, जग आनंद छहैं ॥

तजि ग्रामकविता, सुकविजनकी अमृतबानी सब कहैं ॥

इस सिद्धान्तमें राजनीति समाजनीति सब है। साथ साथ धर्मनीति भी है और उसमें बाबू हरिश्चन्द्रजीका जो कुछ मत था वह भी भल-

कता है अर्थात् “हरिपद मति रहै” और “नारिनर सम होहि” का गङ्गामदारका जोड़ा भी साथ साथ है ।

सरकारने भी कवि-वचन-सुधाकी सौ कापियाँ खरीदी थीं । जब उक्त पत्र पाक्षिक होकर राजनीति सम्बन्धी और दूसरे लेख स्वाधीनता भावसे लिखने लगा तो बड़ा आंदोलन मचा, यद्यपि हाकिमोंमें बाबू हरिश्चन्द्रकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, वह आनरेरी मजिस्ट्रेट किये गये थे तथापि वह निडर होकर लिखते रहे और सर्वसाधारणमें उनके पत्रका आदर होने लगा, यद्यपि हिन्दी भाषा के प्रेमी उस समय बहुत कम थे तो भी हरिश्चन्द्र के ललित लेखोंने लोगों के जीमें ऐसी जगह करली थी कि कवि-वचन सुधाके हर नम्बरके लिए लोगोंको टुकटकी लगाये रहना पड़ता था । जो लोग राजनीति दृष्टिसे उसे अपने विरुद्ध समझते थे वह भी प्रशंसा करते थे । दुःखकी बात है कि बहुत जल्द कुछ चुगुल-खोर लोगोंकी दृष्टि उसपर पड़ी । उन्होंने कवि-वचन-सुधाके कई एक लेखोंको राजद्रोहपूरित बताया, दिल्लगीकी बातोंको भी वह लोग निन्दा सूचक बताने लगे । मरसिया नामका एक लेख उक्त पत्रमें छपा था, यार लोगोंने छोटे लाट सर विलियम म्योरको समझाया कि यह आपही की खबर ली गई है । सरकारी सहायता बन्द हो गयी । शिक्षाविभागके डाइरेक्टर कैम्पसन साहबने बिगड़कर एक चिट्ठी लिखी । हरिश्चन्द्रजीने उत्तर देकर बहुत कुछ समझाया बुझाया । पर वहाँ यार लोगोंने जो रंग चढ़ा दिया था वह न उतरा । यहाँतक कि बाबू हरिश्चन्द्रजीकी चलायी “हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका” और “बाल-बोधिनी” नामकी दो मासिक पत्रिकाओं की सौ सौ कापियाँ प्रान्तीय गवर्नमेंट लेती थी वह भी बन्द की गई ।

इन फिकरेबाज़ लोगोंके दममें हाकिम कभी कभी किस प्रकार आ जाते हैं इसकी एक उन्हीं दिनोंकी दिल्लगी सुनने के योग्य है । हमारे वर्तमान महाराज सप्तम एडवर्ड उस समय प्रिन्स आफ वेल्स थे और श्रीमानने पदार्पण किया था । राजभक्तिकी तरंगोंसे भारतवर्ष भारत-

महासागरकी तरह तरंगित था। कवि-वचन सुधा ने श्रीमानकी स्वागत में “पदार्घ्य” नामकी एक कविता लिखी थी। सब लोग जानते हैं कि “पादार्घ्य” कितनी शिष्टताका बर्ताव है और हिन्दुओंकी कैसी पुरानी चाल है। तथापि यार लोगों ने हाकिमको समझाया था कि इसका अर्थ जूतियोंसे पीटना भी है। यार लोगोंके ऐसे गुणोंपर मोहित होकर गोस्वामी तुलसीदासजी अपने रामचरित मानसमें इनकी बहुत कुछ वन्दना कर गये हैं।

हाकिमों का ऐसा हल्का बर्ताव देखकर निर्भीक हरिश्चन्द्रने आनरेरी मजिस्ट्रेटीका भार उसी दम अपनी गर्दनपरसे उतारकर फेंक दिया और हाकिमोंसे मिलने जुलने या उनकी दरबारदारी करनेका नाम न लिया। इसके बाद कवि-वचन-सुधाका नाम सर्वसाधारणमें खूब बढ़ा। उसको बहुतसे अच्छे लेखक मिले थे। उनमेंसे कई एकके नाम हमें मालूम हुए हैं। पं० श्रीराधाचरण गोस्वामी, बाबू गदाधरसिंह, बाबू काशीनाथ खत्री, लाला श्री निवासदास, पं० बिहारीलाल चौबे, पं० सरयूप्रसाद, बाबू तोताराम वर्मा, मुंशी कमलाप्रसाद, पं० दामोदर शास्त्री, बाबू ऐश्वर्यनारायणसिंह, बाबा सुमेरसिंह, बाबा सन्तोषसिंह बाबू गोकुलचन्द्र, बाबू नवीनचन्द्रराय। पत्र कुछ देरसे निकलता था कारण यह कि उस समय समयपर पत्र निकालनेका अभ्यास लोगोंको नहीं पड़ा था, तथापि बाबू हरिश्चन्द्रजी ने समयपर निकालनेके लिये उक्त पत्र पं० चिन्तामणिराव धड़फलेके हवाले कर दिया। पत्र समयपर निकलने लगा पर पीछे हरिश्चन्द्रजीने लिखना छोड़ दिया। इससे पत्रका प्राण निकल गया। इसके अन्तिम नम्बर हमने भी देखे हैं। सारहीनसे होते थे। कुछ दिन व्यास रामशंकर शर्मा भी इसके अवैतनिक सम्पादक थे। सं० १९४२ में इसके अधःपतनका समय आ गया। लार्ड रिपनका जमाना था। इलबर्गबिलका^१ आंदोलन हुआ। राजा शिवप्रसाद सितारे-

^१ लार्ड रिपनके समयमें एक आर्इन इस सम्बन्ध में उपस्थित हुआ

हिन्दने उसका विरोध करके स्वदेशवासियोंकी दृष्टिसे अपने को गिराया था । कवि-वचन-सुधाने राजा शिवप्रसाद का साथ दिया इससे वह भी गिरा । यहाँतक कि सं० १६४२ वि० में वह पत्र बन्द हो गया । उसी साल बाबू हरिश्चन्द्रजी का देहान्त हुआ था । दूसरे हिन्दी पत्रोंने बाबू साहबके शोकमें महीनों तक काला बार्डर देकर लेख छापे, पर इस पत्रने अपने जन्मदाता के लिए एक कालम भी काला न किया ।

था कि भारतीय न्यायाधीश गोरे अभियुक्तोंका भी विचार किया करें ।
इसका नाम इल्लवटं बिस्स था । यह पास न हो सका ।

^१बार्डर = किनारा ।

१७—बाबू राधाकृष्णदास

काशीनिवासी अगरवाले, बाबू हरिश्चन्द्रके फुफेरे भाई थे। जन्म, संवत् ११२२ में हुआ। यह केवल ४२ वर्षकी अवस्थामें सं० ११९४ में स्वर्णवास हुए। भारतेन्दु ने इन्हें हिन्दी लिखनेको प्रोत्साहित किया था। भारतेन्दु जीके अधूरे ग्रन्थ कालचक्र, प्रशस्तिसंग्रह, सती-प्रताप, राजसिंह आदिको इन्होंने पूरा किया और स्वयं आर्य्य चरिता-मृत, धर्माज्ञाप, मरता क्या न करता, स्वर्णलता, बापारावण, दुःखिनी बाला, निःसहाय हिन्दू, सामयिक पत्रोंका इतिहास आदि ग्रन्थ लिखे। भारतेन्दु, सूरदास, नागरीदास, तथा विहारीलालकी संचिप्त जीवनियाँ लिखीं। राजस्थानकेसरी इनका प्रसिद्ध लोकप्रिय नाटक है। इन्होंने नहुष नाटक सूरसागर और भक्त नामावली का सम्पादन भी बड़ी योग्यतासे किया है। इनके गद्य और पद्य दोनों मनोहर होते थे। गद्यकी भाषा उत्कृष्ट होती थी। उर्दूके भी पंडित थे और उर्दूमें कविता भी कभी कभी करते थे। हिन्दीके विषयमें जो उनकी सम्मति थी उसीका अवतरण हम नीचे देते हैं।

हिन्दी क्या है

हिन्दोस्तान निवासी जनसाधारणकी भाषाका नाम हिन्दी है। हिन्दी के बहुत कुछ रूपान्तर हुए और वर्तमान कालमें भी बहुत से भेद हैं। हिन्दुस्तान की बनावट पृथ्वीके सब देशोंसे कुछ विलक्षण ही है, ध्यान देकर देखियेगा तो स्पष्ट जान पड़ेगा मानों परमेश्वरने संसार को बनाकर इस देशको सबका इंग्लिविशन (प्रदर्शिनी) बनाया है। इस देशके जितने खंड हैं, उतनी ही चाल उतने ही जुदे जुदे जलवायु प्रकृति, सारी पृथ्वीका नमूना यहाँ मिलता है। अरबदेश सी गर्मी और रेगिस्तान इस देशमें देख लीजिये; लैपलैण्ड सी सर्दी इस देशमें अनु-

भव कर लीजिये, काबुल के मेवे यहाँ लीजिये, संसार भर के अन्न यहाँ खाइये, गोरे से गोरे काले से काले वीरशिरोमणि, मारतों के पीछे भागतों के आगे, सभी प्रकृति, सभी अकार के मनुष्य यहाँ हैं। काश्मीर भी इस देश में है और मारवाड़ का रेगिस्तान भी यहीं। इन्हीं कारणों से यहाँ की भाषा के भी बहुतेरे भेद हैं। दूसरे और देशों में इसके विरुद्ध एक ही सा जलवायु, एक ही सा रूप आकार स्वाभाव भाषा फलफूल अन्न सब एक ही से पाये जाते हैं। इसलिए और देशों के साथ मिलान करके इस देश का अनुमान करना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है, परन्तु क्या इससे यही सिद्ध हो गया या यही मान लेना चाहिए कि इस देश की कोई एक भाषा नहीं है ? यदि आप ध्यान देकर देखेंगे तो अवश्य ही सब के भीतर मूल एक ही पावेंगे। सब भेदान्तरों को एक ही सूत्र में बँधा पावेंगे। वह सूत्र कौन है ? हिन्दी में चाहे जिसका भेष देखिये, चाहे उसे बङ्गालिन के भेष में देखिये, चाहे पागसिनों की साड़ी और रूमाल पहिरे देखिये, चाहे पाश्चिमात्य बड़े बड़े घाँघरे और ओढ़नी के घूँघट में पाइये और चाहे पायजामा और दुपट्टे की पोशाक पहने यवनगृह में देखिये, परन्तु तनिक भी विचारपूर्वक आप जिस समय देखेंगे अनायास पहिचान लेंगे—यह तो हिन्दी है। निदान हिन्दुस्तान की यदि कोई एक भाषा हो सकती है तो वह हिन्दी है। यद्यपि हिन्दी और उर्दू ये दो भाषा इस समय प्रचलित हैं और सदा से इन दोनों में भगड़ा चला ही आता है परन्तु यथार्थ में उर्दू और कुछ नहीं है केवल हिन्दी ही है। भेद इतना ही है कि हिन्दी से और जितनी भाषा बनी हैं वे सीधे अक्षरों में अर्थात् देवनागरी अक्षरों से निकले अक्षरों में लिखी जाती हैं। यद्यपि उर्दू उलठे अक्षरों में—अर्थात् फ़ारसी अक्षरों में लिखी जाती है। यद्यपि उर्दू में फ़ारसी के कठिन शब्दों को मिलाकर लोग इतनी कठिन भाषा बना डालते जितनी की हिन्दी को लोग संस्कृत शब्दों से, परन्तु यथार्थ रूप उर्दू का देखिये तो सिवाय हिन्दी के और कुछ न पाइयेगा, क्रिया तो सब हिन्दी निर्विवाद है ही, परन्तु शब्द भी हिन्दी के बहुत से मिलेंगे।

यह साधारण नियम है कि जब जो राजा होता है जो उसकी भाषा होती है तब वही प्रधानता प्राप्त करती है। इसी से मुसलमान बादशाही के समय हिन्दी में बहुत से फ़ारसी शब्द ऐसे मिल जुल गये कि अब वे मानों हिन्दी के ही जान पड़ते हैं। किसी भाँति वे हिन्दी से अलग नहीं किये जा सकते। यहाँ तक कि अच्छे अच्छे हिन्दी के लेखक भी उन्हें बेधड़क लिख जाते हैं और कभी उनपर ध्यान भी नहीं जाता। यह कुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि मुसलमानी राज्य तो लगभग हजार वर्ष तक यहाँ रहा है अंग्रेज़ी राज्य को अभी डेढ़ ही सौ वर्ष के लगभग हुए, परन्तु अंग्रेज़ी के बहुत से शब्द ऐसे मिलजुल गये हैं कि अब वे हिन्दी ही के जान पड़ते हैं—जैसे रेल, स्टेशन, लालटेन, टमटम इत्यादि। परन्तु यथार्थ में देखिये तो हिन्दोस्तान की भाषा हिन्दी ही पाइयेगा। कुछ लोगों का यह कथन है कि प्रायः ग्रामीण लोग उर्दू ही समझ सकते हैं, संस्कृत के शब्द मिली हिन्दी नहीं समझ सकते, परन्तु यह ठीक नहीं है। कौन ऐसा हिन्दू है जो साधारणतः रामायण को न समझ सकता हो ? इसमें सन्देह नहीं कि वे संस्कृत के कठिन शब्द नहीं समझ सकते परन्तु साथ ही वे उर्दू के भी कठिन शब्द नहीं समझ सकते। उनके लिये जैसे महाशय और महोदय हैं, वैसे ही जनाब और हुज़ूर हैं। उनसे तो यदि आप राउरे या राउर कहकर सम्बोधन कीजिये तो वे भट समझ जायेंगे, परन्तु यह शब्द कहाँ से आया ? क्या यह संस्कृत के 'रावल' शब्द का अपभ्रंश नहीं है ? यों ही जब आप ध्यान देकर देखेंगे तो जनसाधारण की बोलचाल में अधिकतर ठेठ हिन्दी के शब्दों को या संस्कृत के बिगड़े शब्दों को पावेंगे और जो फ़ारसी के शब्द उनमें मिलेंगे वे भी ऐसे ही होंगे जो अब हिन्दी के साथ ऐसे मिल गये हैं मानों वे हिन्दी ही के हैं। हिन्दी की चिट्ठीपत्री की प्रशस्ति, बहीखाते की लिखावट आदि देखिये, सब में आप मुख्य शब्द हिन्दी ही संस्कृत के पाइयेगा। आप हिन्दुओं की बात जाने दीजिये, मुसलमानी महल्ले या गाँव में चलिये और साधारण मुसलमानों से दस्तख़त कराना आरम्भ कीजिये, देखिये जितने लिखे-पढ़े

मुसलमान मिलेंगे उनमें अधिकता हिन्दीहीमें दस्तखत करनेवालों की होगी । डाकखानों में देखिये तो अधिक चिट्ठियाँ हिन्दीही सिरनामेकी मिलेंगी, पुस्तकोंमें देखिये तो रामायणके बराबर किसी उर्दू पुस्तककी बिक्री न होगी, बरंच उर्दू अलिफलैला से हिन्दीमें उसका अनुवाद अधिक बिकता है ।

हम ऊपर सिद्ध कर चुके हैं कि भिन्न भिन्न प्रकृति और जलवायु के कारण भाषा में भिन्नता पायी जाती है, परन्तु यथार्थमें सब भाषा हिन्दीही की रूपान्तर हैं । सब प्रान्तके निवासी कुछ कठिनतासे हिन्दी बोलीको समझ सकते हैं और अधिकांश लोग टूटी-फूटी हिन्दी बोल भी लेते हैं, परन्तु हिन्दुस्तानमें प्रति चार योजन अर्थात् बारह कोसपर बोली बदलती जाती है और इसीसे बहुतसे रूप हो गये हैं । ब्रजसे चाहे जिस ओर चलिये, बराबर थोड़ा थोड़ा भेद पाते जाइयेगा । यहाँ तक कि बङ्गाल पहुँचते पहुँचते वह बङ्गला हो जायगी । और उधर दक्षिण पहुँचते पहुँचते गुजराती और महाराष्ट्री हो जायगी । परन्तु क्रमसे मिलाते चलिये तो बहुत स्पष्ट भेद जान पड़ेगा । निदान हिन्दी के हिन्दोस्तानकी भाषा होनेमें कोई सन्देह नहीं है, पर इसके बहुतसे भेद हो गये हैं, जिनमें चार मुख्य हैं, १—पूरबी—बनारस प्रान्तकी, २—कनौजी—कानपुर प्रान्तकी, ३—ब्रजभाषा—आगरा मथुरा प्रान्तकी, ४—खड़ी बोली—सहारनपुर मेरठ प्रान्तकी ।

यह सब भेद तो हुए बोलचाल और प्रादेशिक हिन्दीके अब हमें उस हिन्दीकी ओर ध्यान देना चाहिए जो सभ्य समाज, राज दरबार वा साहित्य में बरती जाती हो, और जिससे सारे देशसे सम्बन्ध हो वह खड़ी बोली है । वर्त्तमान समयमें उर्दू और हिन्दी दोनों ही सभ्य भाषा खड़ी बोलीहीके भेद हैं । उर्दूके दोष और हिन्दीके गुण हम आगे चलकर दिखलावेंगे यहाँ केवल यही कहना चाहते हैं कि हिन्दी क्या है ?

सारे संसारकी यह रीति है कि जनसाधारणकी बोलचाल से और साहित्यकी भाषासे बड़ा भेद रहता है । साहित्यकी भाषा सदा ऊँचे दर्जे

की रहती है; अतएव हम लोग हिन्दी भाषा उसी को कहेंगे जिसमें शुद्ध शब्द हों और जिसमें विद्या-सम्बन्धी किसी विषयके लिखने में कठिनता न हो। जबकि अंग्रेजोंके बच्चोंके लिये व्याकरण आदि पढ़नेकी आवश्यकता होती है तो हिन्दोस्तानियोंको हिन्दी ग्रन्थ समझने के लिए हिन्दी पढ़नेकी आवश्यकता हुई तो इससे आश्चर्य क्या है ? पर हाँ, साथ ही हम यह अवश्य कहेंगे कि कचहरीकी भाषा ऐसी ही सहज रहनी चाहिये जो सर्वसाधारणके समझमें यथासम्भव अनायास आ सके, चाहे आवश्यकतानुसार उसमें उर्दू और अंगरेजी के भी शब्द मिला दिये जायें।

१८--राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

बी० ए०, बी० एल०, एम० आर० ए० एस०

राय साहब ने जबलपुर में अगहन बही तेरस संवत् ११२५ को जन्म लिया। घराना भद्रस जिल्ला कानपुर था, परन्तु वहाँ उनके पिता राय वंशीधरजी वकासत करते थे। राय को उपाधि शाही जमाने से ही इस श्रीवास्तव कायस्थ कुल में चली आयी है। पूर्णजी को चार बरस का ही छोड़कर राय वंशीधर जी परलोक सिधारे। माता ने होनहार बालक को पूरी शिक्षा दिलायी। सं० ११४२ में बी० ए०, और तदन्तर बी० एल० हुए। कानपुर में आकर वकासत करने लगे। छात्रावस्था से ही कविता की ओर प्रवृत्ति थी। फ़ारसी संस्कृत दोनों की शिक्षा पायी थी। बी० ए० की परीक्षा देने के बादही “चन्द्रकला भानुकुमार नाटक” का अधिकांश भाग लिख डाला था। उसी को दुहराकर और पूरा करके सं० ११६१ में छपवाया। कानपुर आकर रसिकसमाज स्थापित किया। इस अर्पूर्व गुण-प्राहक प्रतिभाशाली काव्यानुरागी को पाकर कवि लोगों ने एक अच्छा केन्द्र बना लिया था। पूर्ण जी साहित्य और संगीत दोनों कलाओं में प्रवीण थे, साथ साथ उदारता भी असीम थी; इसलिए दोनों के मर्मज्ञों का राय साहब के “बैकुण्ठ” में आनन्द रहता था। थोड़े ही दिनों में राय साहब कानपुर के नामी वकीलों में हो गये। देश-हित का कोई काम न होता था जिसमें रायसाहब योग न देते थे। सनातन-धर्म के स्तम्भ थे, रसिक समाज के प्राण थे। वक्तृता कितनी ओजस्विनी होती थी, इसकी बानगी हिन्दी साहित्यकों के पाँचवें सम्मेलन में मिली थी। गोरखपुर के प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन में सभापति हुए थे। इसके दो ही महीने बाद बीमार हुए। संवत् ११७२ की अषाढ़ सुदी चौथ के दस बजे के लगभग बैकुण्ठवास हुआ।

वर्तमानकाल के कवियों में रायसाहब काव्यरोति के वास्तविक आचार्य थे । कविता के लिए ब्रजभाषा को उपादा पसन्द करते; परन्तु खड़ी बोली की कविता भी बड़ी जोरदार और स्वाभाविक होती थी । व्यंगोक्ति के उस्ताद थे । इनके मनहरण सचमुच मनहरण ही होते थे, परन्तु और छन्दों में भी इनकी कविता कम रसीली नहीं होती थी । इनके गद्य में भी पद्य का आनन्द आता है । रायसाहब पंडिताऊ शैली के पक्षपाती थे और फ़ारसी अरबी वा अन्य विदेशी शब्दों का भरसक बहिष्कार करते थे । तत्सममयी भाषा उन्हें इतनी रुचती थी कि अपने नाटक में स्त्रियों की भाषा भी वही विशुद्ध पंडिताऊ हिन्दी रखी है, भूमिका में इन बातों का उल्लेख भी किया है । यह नाटक जान बूझकर बहुत बड़ा बनाया गया है । इसमें रसों का तथा सभी अलङ्कारों का समावेश हुआ । नायिका भेद भी कम ही छूटे होंगे । निदान, काव्य के सभी अङ्ग निबाड़े गये हैं । धाराधरधावन भी मेघदूत का ऐसा सुन्दर अनुवाद हुआ है कि मौलिक कविता का आनन्द आ जाता है यह दो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, परन्तु अनेक ग्रन्थ अभी अप्रकाशित पड़े हैं स्फुट कविताओं और पूर्तियों का ही संग्रह किया जाय तो बहुत ग्रन्थ तैयार हो सकता है गद्य लेखों में अमोच्छेदन जो भारतमित्र में सं० १९६१ में छपा था और साहित्य हत्या जो कुछ पहले छपी थी देखने योग्य है । अमोच्छेदन में थियोसोफिकल सोसाइटी के सम्बन्ध में बड़े रसीले कथोपकथन रूप में विचार है । साहित्यहत्या में कई महत्वपूर्ण समालोचनाएँ हैं । संवत् १९६६ में 'रामरावणविरोध, नामक चम्पूकाव्य के साथ जो समर्पण पुष्पांजलि रायसाहबने छपवायी थी वह गद्य-काव्य का एक नमूना ही नहीं है वरन् उसमें मातृभक्ति के सच्चे हार्दिक उद्गार हैं और साथ ही उससे लेखक के बंश और जीवन सम्बन्धी अनेक बातें मालूम होती हैं ।

^१ 'पूर्णसंग्रह' नाम से छप गया ।

चंद्रकला भानुकुमार नाटक

पाँचवाँ गर्भाङ्क

प्रथम अंक

स्थान—विजयनगर, भानुकुमार का महल

समय सायंकाल ।

(भानुकुमार सोच करता हुआ टहल रहा है)

भा०—(मन में) राजकुमारी चन्द्रकला के वियोग में फिर भी भूत वर्तमान भविष्यत् तीन काल के समान अति दीर्घ तीन मास व्यतीत हो गये, (ठहरकर) इस वसन्त में तो वियोग ने मेरी अच्छी गति बनायी है—

पञ्चसर^१ ज्वालनकी तपिये अधूप धुनी,

चन्द्रमुखी ध्यान ही अराधना बिधान हैं ।

सुमिरन मन्त्रजाप, चिंता हरि चिंतन है,

राग बाग त्याग खट सम्पति समान हैं ।

सुमिलन आस सिद्ध आसन लगैये सुठ,

स्वप्न को दरस त्यों समाधि सुख खान हैं ।

देत गति योगिन की पूरन त्रियोगिन को,

विरह महन्त की अनोखी यह बान हैं ।

(ठहरकर) मनकी रुचि तो है उसे इसी दशा का अनुभव रुचि-कर हो रहा है—

कीट समंदर^२ सम करत, मो मन सुरुचि प्रकास ।

प्रिया प्रेम पावक पकत, पावत परम हुलास ॥

कामदेव । २“समंदर” पारसियों के मत से एक कीड़ा है जो अग्नि में ही जीता रहता है और अग्नि के शीतल होने पर मर जाता है । शुद्ध फ़ारसी शब्द है ।

(धीरज का प्रवेश)

धी०—महाराज एक तामड़ा कबूतर पत्रसहित इसी समय कंगूरे-पर आकर बैठा है, निवेदन करने को आया हूँ—(जाता है)

भा०—अच्छा ! यज्ञ से लाओ । (धीरज गया)

(स्वगत) इस दुःखद ऋतु को ऋतुराज कहते हैं । यह अपने साथ ही शोभा और उत्साह लाता है । वाह ! मिथ्यावादियों को ऐसी भूठी प्रशंसा करते लज्जा भी नहीं आती, पित्त को कुपित कर ज्वर से शरीर-को जलाने वाला, कफकी उत्पत्ति करके श्लेष्मा इत्यादि रोगों से प्राणियों को पीड़ित करनेवाला प्रसूनवाणों के समूह से कुसुमायुध को साहस दिलानेवाला, दीन वियोगियों को निर्दयता से संताप देनेवाला यही पापी वसंत है वा और कोई ? बिना मद्यपान के किसी को मत्त होते नहीं सुना था परन्तु इस ऋतु का यह भी एक निन्दायोग्य प्रभाव है कि छोटे बड़े सभी बिना कारण उन्मत्त हो रहे हैं, घर घर गली गली गाँव गाँव हा हा ही ही हू हू मच रही है । पागल तो भला कुछ शान्त होकर भी बैठता है । यदि कोई स्वान वा शृगाल इस भाँति शोर करे तो उसे लोग खेदकर गाँव से बाहर निकाल दें ।

(ठहरकर, कुछ कौतुक से) मेरी चिकित्सा के लिए एक कविराज साक्षात् श्री धन्वन्तरि के अवतार उद्यत रहते हैं, त्रिकाल तो नाड़ी परखते हैं पर निदान ऐसा ही करते जिससे हँसी बिना आये न रहे, अजीर्ण, श्लेष्मा, पित्त, ज्वर, इत्यादि तो सभी कुछ बारी बारी से बतला चुके अब कदाचित् उन्माद की बारी होगी, कल्ह प्रातःकाल से रूपरस^१ और मकरध्वज^२ सेवन का उपचार किया है, वाह ! अब तो हम वैद्यजी को अवश्य सराहेंगे ।

^१रूपरस श्लेषार्थ से चाँदी का रस भी हुआ और रूप के अवलोकन का ध्यान का भी सुख । मकरध्वज औषध भी है और कामदेव का भी नाम है ।

(धीरज का प्रवेश)

धी०—महाराज यह पत्र लिजिए ।

(पत्र देकर गया)

भा०—(मन में) वाह रे तामड़े । वाह रे कबूतरो ! धन्य प्रताप-कुमार का प्रबन्ध !

लावत प्रिय पाती सुखद, जबहिं बिकल मन होत ।

प्रीति सिन्धु के पोत हैं, मेरे मीत कपोत ॥

(पत्र खोलता हुआ) न जाने प्रिया हमसे कब तक विलग रहेगी, फाल्गुन की पूर्णिमा तो बहुत दूर नहीं है फिर अब तक चन्द्रकला के स्वयम्बर का न्योता श्री कञ्चनपुरनरेश ने यहाँ क्यों नहीं भेजा ? (पत्र पढ़कर) इस पत्र ने तो मुझे अपार चिन्ता का पात्र बनाया । (सोच के साथ) राजा लोकसिंह अब पूर्वसम्मति के अनुसार चन्द्रकला का स्वयम्बर फाल्गुन में नहीं रचना चाहते, इसका कारण ठीक नहीं जाना गया है परन्तु ऐसी किंवदन्ति सुनी गयी है कि अमरावती के स्वर्ग निवासी राजा महिपालसिंह के साथ चन्द्रकला का विवाह करने का निश्चय राजा लोकसिंह ने किया था उस समय चन्द्रकला केवल सात वर्ष

कुछ सम्बन्ध न रखता हा ? यह इन्द्रवला महिपालसिंह का मुसाहब या बार बार उसकी दुष्टता और दुर्जनता लक्षित होने पर महिपालसिंह ने

उसे अपने राज्य से निकाल दिया था तब से वह लोकसिंह के दरबार में चाटुवाद^१ चाकरी करके जीता है; पर अभी उसकी दुष्ट प्रकृति नहीं छूटी है। बिच्छू चाहे किसी का बुरा न चेते परन्तु वह स्वभाववश डङ्क मारे बिना नहीं रहता, विषी वृक्ष को चाहे सहस्र बार काटो परन्तु वह जब पनपेगा तब विष ही प्रकट करेगा, इसी प्रकार स्वाभाविक दुष्ट पर दंड का प्रभाव कदापि नहीं होता इसलिए उसे समूल नष्ट करना ही उचित होता है। इन्द्रबली की पिशुनता से कंचनपुर के कतिपय सभासदों को हानि पहुँच चुकी है; परन्तु अब लोकसिंहजी भी उसे भलीभाँति जान गये हैं और उसे बहुत मुँह नहीं लगाते। (सोचकर) जब से दिकपाल राजा हुआ है तब से इन्द्रबली अमरावती को जाने लगा है, क्यों न हो, दिकपाल के व्यभिचार में तो सदैव इन्द्रबली का भाग रहा है, दिकपाल ही की संगति छुड़ाने के लिये तो इन्द्रबली देश से निकाला गया था। (क्रोधसे) कोई उन कुमार्गगामियों से कहे कि मैंने पृथ्वी पावक और पवन को साक्षी करके उस सत्यव्रत कुमारी का हाथ पकड़ा है, मेरे जीते कौन समर्थ है जो उसकी पवित्र कुलीनता पर आक्रमण कर सके? यदि महिपालसिंह स्वयं आज जीते होते तो लोकसिंह के दिये हुए वचन की अज्ञानता में जो मैंने राजकुमारी चन्द्रकला से सच्चा प्रेम किया उसको जानकर वह कदापि लोकसिंह से उस वचन को पूरा कराने का प्रयत्न न करते, फिर भला पापागार राजकुलांगार कलि और कालका सताया हुआ दिकपाल बेचारा कौन होता है? प्रिये चन्द्रकले! यह सब इस समय मेरी कल्पना मात्र है, पर मैं इदं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि सत्य ही इन्द्रबली ने मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध जानकर दिकपाल को उस्काया है और दिकपाल अधर्म करने पर तत्पर है तो मैं सौभाग्यभूमि में तुम्हारे सत्यव्रत और सुख्याति की रक्षा करके अपने वचन का प्रतिपालन करूँगा।

(तीतरका शब्द सुनाई देता है)

(धीरजका प्रवेश)

धी०—महाराज एक और पत्र लीजिये, उसी तामड़ेकी मादा अभी पहुँची है ।

(पत्र देकर जाता है)

भा०—(पत्र लेकर टहलता हुआ) प्रतापकुमारजीको बुलाओ ।

धी०—जो आज्ञा ।

भा०—(टहलते हुए, पत्र पढ़कर क्रोधमें भरा हुआ खड़ा ही रहता है) इस पत्रको पढ़कर मेरी क्रोधाग्नि दूनी प्रचण्ड हुई, (क्रोधसे) सत्य ही दुर्जन दिक्पाल कुमतिवश कालकवल हुआ चाहता है, उस राजकुल-कलंकने महाराजा लोकसिंहको संदेशा भेजा है कि “मैं अपने भाई का उत्तराधिकारी हूँ, इसलिये चन्द्रकलाको व्याहनेका उसे जो वचन दिया गया था वह मेरे साथ पालनीय है ?”

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह आग इन्द्रबलीकी लगायी हुई है, जब मैं मंगलेश्वरजीके मन्दिर से निकला था उसने पलमात्र के लिये मुझपर ऐसी घोर द्वेषकी भरी सर्पकी सी दृष्टि फेंकी थी कि मानों उसके अन्तःकरणमें मेरे प्रति निरा द्रोहविष भरा था । उस द्रोह का कारण स्पष्ट है । महिपालसिंह मेरा मित्र था और इन्द्रबली के अमरावतीसे निकाले जानेमें मेरी भी अनुमति थी । रहा क्रूर दिक्पाल सो वह तो निरा विचारशून्य और अविवेकी है, इन्द्रबलीने जो कह दिया उसे गुरुमन्त्रवत् मान लिया, (ठहरकर अधिक क्रोध से) वाह वाह ! कैसे कैसे धर्मधुरन्धर राजा होने लगे !

भुलाने विषयभोग में भूष, दिये हैं धर्म कर्म बिसराय ।

बितावे सुखसाधनमें काल, प्रजाको सुख वे जेहिं बलाय ॥

नीति की कथा न भावै नेकु, अघम कुटनीके बैन सुहात ।

दरस सज्जनको सुखद न होत, निरखि गनिकाको रूप लुभात ॥

देव सन्तनके चरित विहाय, पढ़त पापिनके असुच प्रसङ्ग ।
साधु संगतिसे वंचित हाय ! नीच भद्गुन्न को राखत संग ॥
पराक्रम विद्या तप विज्ञान, न भावे सीखें दुष्टाचार ।

(घृणा और क्रोध से)

बढ़े हैं कलियुग में भूपाज, नराधम भूपति-कुल अंगार ॥
(ठहरकर) जब पापीकी मृत्यु निकट आती है तब वह घोर से घोर पाप करने लगता है मानों उसे सन्देह होता है कि मरने पर पापियोंमें कही उसकी मर्यादा न्यून न हो जाय ।

करत पतित उश्वात अति मृत्यु होति जब पास ।

जिमि पिपीलिका पर जमत बेगहि लहत बिनास ॥

(टहलता है)

(ठहरकर) अधर्मियोंका विधाता कदापि साथ नहीं देता !

बालि अनुज नारी रतहि बध्यो राम बल सीम ।

पांचालीरत कीचकहि पटकि पछार्यो भीम ॥

इसी भाँति मैं भी इस कुलांगारका जीवन-दीपक समर भूमिमें बुझाऊँगा—(प्रकट) अरे है कोई, शीघ्र ही प्रतापवीरको बुलाओ । क्या कहा ! हाँ अच्छा धीरज तो उनको बुलाने गया है (कुछ ही ठहरकर) नहीं नहीं ! बहुत बिलम्ब हुआ । धीरज, धीरज ! अरे अभी नहीं आया ! बजरंग जा तो जल्दी, प्रतापकुमारको ले आ ।

(तीसरा बोलता है)

(बाहर)—जी महाराज ! मैं अभी जाता हूँ ।

भा०—(मनमें उसी भाँति क्रोधसे) इसी समय वीररसकी प्रबल तरंगोंसे मेरा शरीर संक्षुब्ध समुद्रमें लंगर डाले हुए जहाज के समान थामे नहीं थमता । शस्त्रप्रहार करनेको भुजदंड बारम्बार फड़क रहे हैं । अरे प्रतापवीर न आये ? तो चलो मैं ही चलकर उनसे कहूँ कि समर चढ़नेके लिए कमर कसें ।

(गया)

(तीसरा बोलता है)

(एक बूढ़े द्वारपाल का प्रवेश—कमर झुकी हुई है, मुँह में दांत नहीं।)

द्वार०—(उत्साह से टहलता हुआ, हाँपता हुआ रुक रुककर)
बाहरे लड़के ! बाहरे कुमार ! भाई तेरा इस समय का प्रचंड कोप देख-
कर मैं तो तुझ पर निछावर हो गया, लोग तो कानाफुसकी करते थे कि
भनुवाँ किसी के प्रेम में पड़कर नपुंसक हो गया ! पर बाहरे मेरे शेर !
आज तो तेरा क्रोध से फड़क फड़क उठना देखकर मैं भी फड़क उठा,
गया हुआ बल पलट आया (अकड़ता है) सोया हुआ साहस जाग
पड़ा (उछल कर गर्जता हुआ) आराम करता हुआ समरोत्साह
आलस्य को झाड़ कर (पैतरे बदलता हुआ) लेना ! मार, मार, लगे
लगे हैं ! कहाँ जाता है ! वहे मारा, वह काटा ! (रुककर) आयेँ !
यह मैं क्या करने लगा ! नहीं, नहीं ! अच्छा तो करता हूँ, राजकुमार
के जी की तो कोई जानता नहीं है, परन्तु है अवश्य किसी युद्ध की
तैयारी में तो मैं भी भूले पाठ याद कर लूँ (पैतरे बदलकर उसी भाँति
ललकारता है) देखा ! बूढ़ा नहीं हूँ, दस जवानों की खोपड़ी भिड़ाकर
चट्टबट्टे लड़ाने वाला योद्धा रहा हूँ, नहीं नही हूँ, (रुककर) क्या !
मुझको भानुकुमार युद्ध में न ले जायेंगे, क्यों न ले जायेंगे, मेरे बलकी
परीक्षा कर देखें ।

(अड़कर चलता फिरता हुआ)

बीर धावें खलकार होय धौसा की धुङ्कार
भिड़ें भट बार बार माचै घोर घमसान ।
कटै मुखनपै मुख परै रुखन पै रुख
मरै मुखन पै मुख मरै बानपै बान ।
मचै बैरिन मंझार सोर जोर हाहाकार
गिरै घायल सिन्धार भगै कायर खे प्रान ।

कहूँ धावे रणभूमि दै कावे घूम घूम
मद बैरिन के गूम कहूँ धूमके प्रमान ।

(पुनः पढ़ता है—तीतर का शब्द)

दूसरा गर्भाङ्क

समय—रात्रि ।

स्थान—चन्द्रकला का बाग ।

[मदोन्मत्त सुखनन्दन माली का प्रवेश]

सुख०—(नाचता कूदता, ग्रामीण प्रकार से कल्लोल करता हुआ जल्द तिताल की चाल पर कल्याण में ।) दैया दैया होई आज, मैया मैया होई रे, (पुनः वैसा ही करता है ।) आय बलैया, लाल बलैया, राधा गोपी कुंवर कन्हैया, तीन धिलची पाँच रुपैया, बीन सरंगी ता ता थैया, दैया रे, मैया रे, बाबा रे, नाना रे, काका रे, दादा रे, भाई री भाई री, राजा ऐहै, बहुत रिसैहै, (दांत पीसता हुआ) का...ट डरिहै, बां...ट डरिहै, खाय जैहै । लील जैहै । (प्रकाश होता है)

अरे दैया रे—अरे बाप रे—इन्दौ ! राजा साहब सांचौ मसालें लेवाय कै आयेंगे । बरबरात ! मैं जनत्यों तो काहे का इती पीत्यो ! अरे दैया रे ! कैसे बतात बनी । (दूर जाकर वृत्तकी आड़ में खड़ा होता है ।)

(लोकसिंह का क्रोध सहित प्रवेश । भृत्यगण साथ हैं उनमें

दोनों भंगोड़ची भी हैं)

लो०—कहाँ है सुखनन्दन (मन में) कुछ दो चार ही दिन से नहीं बरन् आज दो महीने से दुष्ट इन्द्रनली मेरी अप्रसन्नता का पात्र हो रहा है । यद्यपि इस बात का कोई प्रमाण अभी नहीं है; परन्तु यदि मैं मान लूँ कि महिपालसिंह के प्रति मेरे वचनदान को न जानकर मेरी लाड़ली बेटी ने भानुकुमार पर सत्य प्रतिज्ञा से प्रेम किया तो क्या धूर्त इन्द्रबली को उचित था दिक्पाल को इस भांति उसकाता ? क्या उस दुरात्मा का

यह कर्तव्य था कि मेरे कुल की सुख्याति पर आक्षेप करने का साहस करता ?

पहला भंगेड़ची—(सुखनन्दन को ढूँढ़कर धक्का देता हुआ लोक-सिंह के पास लाता हुआ) मर ससुर नसैल नहीं तो, पेड़े की आड़ में लुकान ठाढ़ रहे ?

सुख०—(दाँत कटकटाता हुआ) बड़ा जाल हैरे । महाराज कै बढ़ती बनी रहे मैं ओस के मारे उहाँ ठाढ़ भा रहौं, मैं तो जनबै न भयों की ई मसाले लै लै के लुकन्दरा हरें कबै पहुँचगे आयके ।

लोक०—मत बकबककर, वह कबूतर कहाँ है जो तू ने लासा लगा कर पकड़ा है ?

सुख०—(मन में) अरे दैया रे कहूँ धोती न बिगड़ जाय (प्रकट) सरदार ए ! इन्दौ, वह बैठ है फुनगुसू कैत, (बतलाता है)

लोक०—अच्छा उसे नीचे ला !

सुख०—(मन में) जब चिड़ीमार चिरैयागिरावत है तब मुच्छन पर ताव दै दै कहत है कि वह देखो नीचे लाया (प्रकट) देखो सरकार ! अब ही नीचे लाता हौं (पत्थर उठाकर मानों कबूतर को मारना चाहता है) !

लोक०—अरे धिक मूर्ख ! उसे जीता पकड़ ला ।

सुख०—(मन में) जाड़े माँ रजाई उतारैका पड़ी ।

लोक०—गंगासिंह तुम सीधे जाकर दक्खिन वाले फाटक पर उपस्थित हो जिस समय महामन्त्री जी उस अपराधी को पकड़कर लावें सीधे हमारे पास लिये चले आवें ।

(गंगासिंह जो आशा कहकर गया)

सु०—(मन में) जुगुत लागै तो दनू^१ हियाँ से टर जाव, घड़ी साइत अच्छी नहीं आय—राजा साहब तो बातनमाँ लागगे हैं ।

(धीरे धीरे जाता है)

लो०—(पुकारकर) और सुनो गंगासिंह ! जब वह राजाद्रोही नगर के भीतर लाया जावे तब पुकारकर प्रजा को सुनाते आना कि उस दुष्ट को कल्ह प्रातःकाल पश्चिम ओर वाले मैदान में सूली होगी ।

नेपथ्य में, गंगासिंह—जोआशा महाराज !

दूसरा भगे०—(सुखनन्दन को झपटकर पकड़ता हुआ) धाखो^१ सरकार ! यौ^२ भाग जात है ।

सुख०—सरकार ! मैं नसेनी लैका जात रहौं ।

लो०—इस वृत्त पर चढ़ना सहज है, नसेनी का क्या काम है ?

सुख०—हाँ, सरकार ! नसेनी का कौन काम है, मैं नसेनी का कबै कह्यो ? मैं तो लसंका^३ करै जात रहौं ।

लो०—(हँसी रोकता हुआ) मत बकबककर, कामकर ?

पहला भगे०—तू बड़ा लुच्चा हा, तोर सब गुन जान लीन गेहैं ।

सुख०—(तीव्र पड़कर) कौन गुन मोर हैं ? मोरे तो हाड़नमा सात सात सीखते राजा साहेब क्यार निमक भिनौ है, लै आवैं सारे इन्द-बलिया का दे काहेका राजा साहेब सूली देहैं, मैं इही ठिकाने जो गुठली खुरपी से न सारेको मूड़ खरबूजा अस तरास देवैं तो तुम्हारे ढेढ़न तरेसे निकर जावैं तौन हौं, का मैं उइ ससुर का घरमा बिआही हौं ? (लोक-सिंह के, पैरो पर गिरता हुआ) सरकार ! जो में कुछौ खुटाई बेटीकै बतात हौं, तो आज के अठएँ दिना मर जावैं (मन में) मैं तो सारे से ईमान जटैका बातै कीनी उइ पाजी अपुसै माँ फोड़ कराय दीनिस ।

लो०—उठ उठ काम कर मैं तुभसे अप्रसन्न नहीं हूँ, परन्तु तू बड़ा मूर्ख है ।

सुख०—सरकार ! मूर्ख तो मोर बापौ रहै मैं कैसे अकिलमंद होत्यों ? बापै पूत परापत घोड़ा बहुत नहीं तौ थोड़ै थोड़ा ।

(सब हँसते हैं)

दूसरा भगै१—चल अब किन्ना^१ न कर, उतार रजाई चढ़ पेड़ पर
सुख०—(रजाई उतारकर) सरकार के कामेमां पसीना के बदले
खून लागै तो इनकार नहिं आय पै सरकार ! इ पीपरमा बरमदेव रहत
है मिरौं तो तुमही साध्यो काहेसे कि तुमही खाली हौ—

लो०—(हँसी नहीं रुकती) अबे चढ़ मूर्ख ! बकवाद क्यों
करता है ।

(सुख० वृक्ष पर चढ़ता है)

(महामन्त्री और दो कामदारों का प्रवेश)

मं०—महाराज की जय हो ! इन्द्रवली का मैंने पीछा किया, तब
उसने विचारा कि घड़ी आध घड़ीमें मैं उसे पकड़ लूँगा तब वह घोड़ेसे
उतर राह कुराह भील भाड़ी मँभाता हुआ भागा । मैं भी उसी भाँति
उसके पीछे हुआ, अबसर पाकर मैंने दो बाण उसको मारे थे जिनके
घाव उसकी पीठपर हो गये हैं—

लो०—(बात काटकर) वह आपको कितनी दूरी पर मिला था ?

मं०—महाराज यहाँसे तीन दिवसकी राह पर समूला नामका ग्राम
है उसके निकट अमराई के बराबर प्रातःकाल मुझे वह देख पड़ा तब
मैंने उसे ललकारा !

लो०—अच्छा फिर बाण लगने पर उसने क्या किया !

मं०—फिर महाराज उसने घोड़े को छोड़कर ऐसा सीधा काटा कि
थोड़े ही समय में रामधाराके किनारे पहुँचकर उसमें कूद पड़ा और पैरकर
दूसरे पार दिकपालकी सीमा में जा खड़ा हुआ । महाराजकी विशेष
आज्ञाके अभावमें मैंने अन्य राज्य में उसका पीछा करना उचित न जाना ।

लो०—अच्छा किया, उस पार जाना उचित न था, फिर क्या
हुआ ?

मं०—नदी के उसपार दिकपालने, जो आखेटके लिये आया हुआ था, इन्द्रबली को घायल देखकर और उससे कुछ सुनकर मुझे पुकारकर कहा कि राजा लोकसिंह दस दिनके भीतर राजकुमारी चन्द्रकलाको मेरे समीप भेज दे, नहीं तो युद्ध के लिये उद्यत रहें ।

लो०—(अति क्रोध से) क्यों नहीं ? उस अभिमानांध क्षत्रिय कुलाधमको इसी समय पत्र लिखिये कि बिना बिलम्बके वह राजद्रोही इन्द्रबलीको हमारी शरण भेजे, अपने अविनय धृष्टताकी हमसे क्षमा मांगे, और अपने धर्मवर्जित हठका परित्याग करे, ऐसे नीच पापी दुर्बुद्धि राजा के साथ कदापि हमारे कुलकी कन्या का सम्बन्ध नहीं हो सकता, यदि हमारे पत्रानुसार वह अनुसरण न करेगा तो उसी दस दिवसके भीतर उसी रामधारा के किनारे संग्राम कर हम उसका देश विजय करेंगे ।

मं०—जो आज्ञा, महाराज । (एक कामदारकी ओर अँगुलिनिर्देश करके) अचलसिंहने बड़ी वीरता के साथ इस धावेमें मेरा साथ दिया, छायाके समान मेरा साथ नहीं छोड़ा है ।

लो०—अचलसिंहको अपनी सेनामें एक शत योद्धाओंका नायक बनाइये, समरकी तैयारी प्रातःकाल ही से प्रारम्भ कीजिये जिन सैनिकोंको गत दो वर्ष की परीक्षामें जय-पारितोषिक मिला था उनकी नामावली भी कल्ह हमको अवलोकन कराइये । सब वीरोंको हमारी यह आज्ञा सुना दीजिये कि अमरावतीकी लूट की वस्तु सब उनमें ही बांट दी जायगी ।

मं०—जो आज्ञा ?

लो०—मन्त्री ! हमारे स्नेही विदेशीय नरेन्द्रोंको भी इस धर्म-युद्ध की विजति देना उचित है ना ?

मं०—निस्सन्देह महाराजा ! इसका भी प्रबन्ध योग्यतासे हो जावेगा ।

(गया)

लो०—(उपर देखकर) अरे क्यों देर करता है ?

सुख०—(कबूतर लेकर उतरता हुआ) मरथोरे ! तमाम दे

बेबुत^१ चबाये खात हैं । राजा साहेब ! रोवां ठाढ़ होत हैं । अरे गिरउं रे (कुछ ऊँचाई से गिरा) कमर सूधि हुआ ! दैया रे !

लो०—(हँसी रोकता हुआ) मत बक, पत्र खोल कर दे ।

सुख०—अले लेव सरकार । मोहका का करैका है 'पत्र' (मनमें) सुदेवी का कौन जुवाब देहों !

पहला भँगेड़ी—तोहका पत्र के बदले "चमारछत्र"^२ चाहिये ।

सुख०—(तीव्र होकर) मैं नहीं देखतेउँ राजा साहब छाड़ि कै जौन कोऊ मोर रोवां ल्यात तो छुड़ लेय, कौन तुम्हारा भांग घोटत की कूड़ा चुराइ हौं जौन मोहका मरिहा !

लो०—क्यों जी तुमने भंग पीना कब से सीख लिया ?

दूसरा भंगे०—अरे गरीबनेवाज ! यौ मलेवा है सार हरामजादा, अपने तो सराब मां मस्त है जौन दूर लै मुँह गन्धात है औरों का यौ का कही !

लो०—अच्छा अब बकबक मत करो (पत्र लेकर पढ़ता है)

(माली और भँगेड़ची आपस में सैनसे धमकी दे रहे हैं)

पहला भंगे०—(धीरे से) सारे ! जाय दे राजा साहब का जो पन हिनै पनहिन तोरे मूढ़ेके बार न भरियाय डारो !

सुख० (पुकारकर) देखो राजा साहब ! मोहका पनहिनै पनहिन मारै कहत है !

लो०—सब चुप खड़े रहो ।

(भँगेड़ी सैन से धमकाता है, सुखनन्दन खीसें दिखलाता है)

^१ बेबुत एक प्रकार का दीमकों से जरा लम्बा परन्तु पीले वा नारंगी रङ्ग का कड़ा होता है जिसे "माटा" कहते हैं । ^२ "चमार छत्रका" अर्थ यहाँ चमार का छत्र अर्थात् जूता है ।

लो०—(पत्र पढ़कर मन में) इस बिना नाम गाम के पत्र से इतना तो अवश्य विदित होता है कि इसका विषय सच्चे और धर्मानु-कूल प्रेम के सिवाय कुछ नहीं है । इस समय यही उचित है कि रानी के पास चलकर विचार ठहराऊँ ।

(भृत्यों समेत गया)

पहला भँगे०—(जो पीछे रह गया था) ले बताओ सरऊ ? अब और चुगली करिहा ?

सुख०—अरे नहीं महरजऊ ! नसामां कहुँ मोरे मुँह से निकरगा होई, मोर मगदूर^१ हे जौन तुम्हार खोट बतैहौं ?

(पहला भंगेड़ी ठिठोली से सुखनन्दन के सिर पर थप्पड़ मारकर गया)

सु०—मर सारे नसैल नहीं ता ! (क्रुदने लगा) दैवारे मैयारे, बम्बारे कक्कारे, चन्द्रकला कै फजिहत होई, ताक धिनाधिन ताक धिना-धिन, कालिन्दी कै दुर्गति होई, ताक धिनाधिन ताक धिनाधिन, मालती रिसवाई जैहूँ, ताक धिनाधिन ताक धिनाधिन । सुदेवी रण्डो कूटी जैहूँ, ताक धिनाधिन ताक धिनाधिन ।

(नँदुवा का दौड़ते हुए प्रवेश)

नँदुवा—दादारे यौ कबूतर मोहका दैदे, छाखौं तो (हाथ फैलाता हुआ) ।

सुख०—(ग्रामीय प्रकार से क्रोध प्रकट करता हुआ) न द्याहौं भेड़हा अस ससुर आधी रात का बगैचामां वेल्हात फिरत है ।

नँदु०—(दुलार करता) नहीं मोर दादा ! तौरे मास खावँ देखक तुरतै दैदँहौं ।

सुख०—(प्यार से) अलेले ! हीईं ठाढ़े ठाढ़े देखले, बड़ा राजा है, बबुआ, मोर कहो बहुत करत है, मोर नन्दन ! सुखनन्दन का सपूत ।

(कबूतर बैठा है)

नंदु०—हां हां ! एई ठिकाने (कबूतर लेकर भागता हुआ) मैं त अब कबूतर न चाहौं कबूतरन के पीछे तो मोहका लेइवा मिलत है ।

सुख०—इंदौं छाखा, मोर झूठ कसम खायगा (झपटता हुआ गया) अरे ठाढ़ रहू ससुर के नाती । (रपटकर गिर पड़ा) अरे दैयां आज मोरी कैश्री अलपै टर गयीं । (कांखता हुआ मुँह बनाकर करिहांव सूध होइगा । दैयारे, (बेग से उठकर, कौतुक से गाने लगत है । (अकड़कर टहलता हुआ)

(आल्हा की राह पर आयें बायें सायें)

बड़े लड़ैया कञ्जनपुर के रस्ता चलत बढ़ावै 'रार हियाँ की बातें हीई' रहिगइ अब आगे कै सुनौ हवाल आय गयी बिरिया मढ़ये की अब भैयारे रचौ बियाह लै लै फौज लड़ैका धाये उमड़े बड़े बड़े सरदार गरज गरज कै डङ्का बाजै आये धरती धमक सिपाह कौन बीर अब आगे आवैं पियो दूध जिन माता क्यार बानन पाटि काटि दल डारौ और देऊं भालन कै मार धँस धँस धमक बजावत धौसा म्ण्डा गाढ़ देऊं मैदान बड़े घमंडी राजा मारौ अंडबंड सब देऊं भुलाय दहिने रहू तू आदि भवानी कुँवरि बियाहि घरै लै जाऊं कढ़बढ़ कढ़बढ़ घोड़े दौड़ै तढ़तढ़ मढ़मढ़ बजै निशान लप लप लप लप तेगा लपकै सरसर सरसर बरसै बान धावै ले ले पटा बनेठी धर धर धमक पछारै जवान सूरन के मन उमगन लागे कूरन के मुर्झाने प्रान नदी बहि गयीं तहँ लोहू की तिनमा भूत परेत किस्काय ताख ठोंक के विक्रम गरजै कायर भागै पीठ दिखाय जिनकी पीठ हाथ धर सीतल कीनों पच्छ सारदा माय तेई जीत खौट के आये तिन घर गाजत अनन्ध बधाय नागढ़ धिन्ना नागढ़ धिन्ना नागढ़ धिन्ना मागढ़ धिन्ना

तीसरा गर्भाङ्क

समय—वही रात्रि

स्थान—चन्द्रकला का महल

(चन्द्रकला और कालिन्दी सोचवश बैठी हैं)

का०—राजकुमारी ! तो क्या तुम इसी सोचमें प्राण खोओगी ? बिचारो तो सही, ऐसी घोर चिन्तासे क्या लाभ होगा ?

चन्द्र०—सखी ! मुझे कोई चिन्ता नहीं है, मुझे केवल पिताकी अप्रसन्नताका सोच है, भानुकुमारको मैं अपना स्वामी उसी समय मान चुकी थी जब सूक्ष्म भावसे स्वप्नमें उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा था । कालिन्दी ! प्राण से अधिक तो कुछ प्रिय नहीं होता परन्तु मैं उसे भी तृण-समान त्याग दूँगी, जब देखूँगी कि दुर्भाग्यसे मेरे सत्यव्रतकी रक्षा और प्रकारसे सम्भव नहीं है ।

करि अधीन मन एकके गुनहुँ न दूजो स्वामि ।

प्रन न रहै तो हे सखी ! प्रानहुको प्रनामि ॥

(मालिती का प्रवेश)

मा०—(आती हुई, मनमें) धन्य है, धन्य है, धन्य है !

चन्द्रकला पातिव्रत्य !

रूपवती सुच सीलहु, सुबरन सङ्ग सुवास ।

दू कुलकी भूखन परम, पूरन पुन्य बिलास ॥

जिस मानवीमें पूर्ण पातिव्रत हो वह वास्तवमें देवी है ।

का०—राजा तुमपर काहेको अप्रसन्न होंगे, राजकुमारी ! ऐसे करुणामय वचन क्यों मुखसे निकालती हो ? तुम्हारा पवित्र मनोरथ तुम्हारी सहायता करेगा (मालितीको देखकर) यह देखो । सखी मालती आयी । इनका प्रसन्न मुख किसी आनन्दसंवादकी अग्रसूचना देता है, कहो सखी ! क्या समाचार है ?

म०—(मुस्कराती हुई) शुभ, मङ्गल ! और क्या ? हां, भानु-
कुमार और चन्द्रकला का विवाह होना कुछ टेढ़ी खीर है ।

चन्द्र०—(शोकसे मनमें) हाय ! इस समय इस चपल भाषिणीके वचन मेरे लिये बज्रसमान घातक होते परन्तु इसका मुस्कराना कहता है कि मेरी आपत्ति रूपी मेघमालाकी ओटमें सुखसम्भावनाकी शुभ्र-
हासिका भी विद्यमान है ।^१

का०—सखी ! तुम बड़ी ही कठोर हो जो ऐसा समाचार सुनाती
हुई भी हँसती हो, अस्तु ! स्पष्ट कहो कि क्या क्या हुआ !

मा०—तुम पागल हो, दोचार महीनेमें न राजकुमारी बूढ़ी हुई
जाती है न भानुकुमारके केश उजले हुए जाते हैं, क्या अच्छा हो यदि
एक धर्मपक्षी पालते हुये पहले दो एक अधर्मियोंका नाश हो लेवे !
युद्ध होना ठहरा है, युद्ध !

चन्द्र०—(कांपकर) हाय सखी ! पिता किसपर चढ़ाई करने वाले
हैं ? भानुकुमार पर ? हाय ! मैं ही इस उपद्रव का कारण हूँ !

मा०—नहीं ! धीरज धरो ! (कोपसे) यह चढ़ाई उस धर्मद्रोही-
पर होगी जो तुम्हें उपपत्नी बनाना चाहता है । विजयनगरवाले तुम्हारे
पिता की ओरसे लड़ेंगे । भानुकुमार समर विजयी होकर तुम्हें ब्याहेंगे ।

चन्द्र०—सखी ! तुमने मातासे क्या कहा था और फिर क्या बात-
चीत हुई ? और यह सब बातें तुमने कहाँ सुनीं ? कृपा करके सब ब्यौरा
कहो, मेरा चित्त अत्यन्त लुब्ध सो रहा है ।

(सुदेवी और कबूतर लिये नँदुआका प्रवेश)

सु०—चला आ भैया ! (चिन्तासे) यह कबूतर आज लासा लगा-
कर पकड़ गया था, इसके पंजे चिपचिपा रहे हैं, यह अवश्य कोई पत्र

^१इस प्रकारके अलंकारिक शाब्दिक चमत्कार—“चपल” “बज्र”
“मुस्कराना” “हासिका” आदि जैसे यहाँ हैं—इस नाटकमें अनेक स्थलों
में अपनी बहार दिखाते हैं ।

लाया होगा, पिता तो मद्योन्मत्त हो रहे हैं पर उनकी टूटीफूटी बातों से इतना मैंने अवश्य जाना कि आज एक पत्र महाराजके हाथ लगा ।

चन्द्र०—हाय ! अब तो सारा भेद खुल गया, मेरे भाग्यने इतने दिन साथ देकर विश्वासघात किया ! अब तो पिताकी अप्रसन्नताका कोई ओरछोर न होगा । (व्याकुल होती है)

मा०—मत घबराओ ! मत घबराओ ! जो समाचार मैं लायी हूँ, कबूतरका भगड़ा उससे बाहर नहीं है । सुनो ! मैं रानीजीसे बातचीत बात भानुकुमारके रूप और शीलकी प्रशंसा करके यह कह चुकी थी कि राज-कुमारीके हृदयमें उनका प्रेमांकुर जमा है और यह भी इतना कह चुकी थी कि विजयनगरके राजकुमार चन्द्रकलाके लिये अतियोग्य वर हैं, उतनेहीमें महाराजको आते जानकर मैं उस स्थानसे अलग जा बैठी । घड़ी साहज अच्छी थी जो रानीजीके कानमें मेरी उतनी बात पड़ चुकी थी महाराजसे यह सुनकर कि दिक्पाल हठसे चन्द्रकलाको मांगता है और नहीं तो युद्धसे धमकाता है, रानीजीने यही कहा कि सिवाय भानुकुमार के उन्हें कोई दूसरा वर चन्द्रकलाके योग्य नहीं जँचता तब महाराजने वही पत्र जो इस कबूतरके पंखसे खोला गया है सुनाया । आहा ! धन्य वह पत्र जो धर्म और सत्यके संवादसे अधिक पवित्र विचारोंसे संपन्न पाया गया, पुण्यात्मा जनोंकी अकस्मात् सहायता हो जाती है, उस पत्रका भाव बड़ा प्रभावशाली सिद्ध हुआ । थोड़ी ही बातचीत के उपरान्त निश्चय हो गया कि चन्द्रकलाका विवाह भानुकुमारके साथ ही होगा । कलहसे समरकी तैयारी होगी । अमरावतीपर बड़े कोपसे चढ़ाई होगी, इसलिये अब बस आनन्द मनाओ ।

चन्द्र०—सखी मालती ! तुमने बड़ा काम किया, मैं सदैव तुम्हारा जस मानूँगी, परन्तु हाय ! जब ऐसे ऐसे विघ्नोंका सामना बना ही है तो आनन्द मनानेका अभी कौनसा अवसर है ?

मा०—अवश्य है ! युद्धका परिणाम अच्छा ही होगा, हाँ, परम्पराकी रीति भंग होकर, अधर्मका विजय हो तो भी इतना आनन्द मुझे

रहेगा कि तुम अपने माता पिताकी स्वीकृतिसे भानुकुमार की वामांगी हुई (उत्साहसे) देखो क्षत्रियकी स्त्री हो, उठो, सावधान होकर अपने नित्य कार्यों में चित्त लगाओ, मैं ब्राह्मण हूँ और तुमको उपदेश करती हूँ, अब चलकर शयन करौ रात बहुत जा चुकी। (सब चलती हैं)

चन्द्र०—(मनमें हे शिवे ! इस युद्ध का परिणाम अच्छा कीजिये ! वित्तसे एक चिन्ता गई, दूसरी समायी। यह महाघोर संग्राम होगा। हे पार्वतीनाथ। प्राणनाथकी प्राणरक्षा तुम्हारे हाथ है।

(सब गयीं)

पाँचवाँ गर्भाङ्क

समय प्रातःकाल।

स्थान—विजयनगर—राजमहलों के समीप मार्ग।

[विजयनगरकी सेना उपस्थित है। बाजे बजते हैं।

जयध्वनि होती है। भानुकुमार प्रतापकुमार
सामरिक वेष में घोड़ों पर सवार है]

भानु प्रता०—(आपसमें कुछ देरतक बातें करके) सुनो मेरे योद्धाओ, सुनो !

निकट के सैनिक—(पुकार कर) बाजा बन्द करो। शौर मत करो सुनो जो कुछ महाराज कहते हैं।

दूसरे सैनिक—(पुकार कर) चुप हो जाव। सब लोग सुनो श्री युवराज जी क्या कहते हैं।

भानु०—मेरे वीरो ! समरभयङ्कर रणधीरो ! तुम जानते हो कि संग्रामका अवसर हम लोगोंको बहुत कालमें मिला है; गत सप्ताहकी परीक्षासे सिद्ध हो गया कि तुम सबके सब महाबली, युद्धविद्यामें

^१स्थान-संकोचके कारण चौथा गर्भाङ्क इस अवतरणमें सम्मिश्रित नहीं किया गया।

निपुण सामरिक कलाओंमें प्रवीण, अपने प्रभुके आज्ञाकारी, राजभक्त और देशहितकारी हो, आज—

सेनामें वाणियाँ—“हम रणभूमिमें अपनी वीरता दिखलावेंगे । हम महाराजके विजयके लिये प्राणोंपर खेल जायेंगे”—

भा०—आज—

सेनामें वाणियाँ—“हम वैरियोंका नाश कर डालेंगे ।”

भा०—सुनो, आज—

सेनामें वाणियाँ—“हम कालपर भी वार करेंगे ।”

भा०—सुनो—

निकटके सैनिक—चुप हो जाओ । पहले सुन लो श्रीमान् क्या कहते हैं ।

(सब चुप हो गये)

भा०—आजके सातवें दिन हम लोग रामधाराके तटपर समर-भूमिमें जा पहुँचेंगे और हमारे पहुँचनेके पूर्व ही कंचनपुरकी सेना वहां पहुँचकर युद्धमें प्रवृत्त होगी । अन्य राजाओं की सेनाओंसे भी तुम्हारा संसर्ग होगा, सभी दल अपनी अपनी वीरता तथा रणकुशलता दिखलाएँगे, अधिक क्या कहूँ ? तुम सब स्वयं ही अपने कर्तव्यको जानते हो उचित यह होगा कि विजयनगरीय सेनावार भूपटमें और सेनाओंसे पीछे न रहे और उस कीर्तिमें जो हम लोगोंको सदा समरोत्साही और संग्राम-दत्त होने के कारण प्राप्त है और भी अधिक उन्नति हो ।

सेना—(विविध वाणियाँ) “निस्सन्देह-निस्सन्देह” “हमारी सेना का डंका सबसे आगे बजेगा”, “सब सेनाओंसे पहले हमारा वार वैरी-पर होगा”, “हम दिक्पालको चटनी कर डालेंगे ।”

प्रता०—बाह बाह रे शूरो !

सेना—“हम इन्द्रबलीको कच्चा चबा जायेंगे ।”

प्रता०—साधु, विक्रान्त योद्धाओ साधु ! (हाथके संकेत से शोर बन्द होनेकी प्रेरणा करता है ।)

निकटके सैनिक—(पुकारकर) चुप रहो, चुप रहो, पहले सेना-पतिजी महाराज जो कहते हैं सुन लो ।

दूरके सैनिक—(पुकारकर) सावधान ! सावधान !! सेनापतिजी महाराज जो कहते हैं सुन लो ।

(सब चुप हो गये)

प्रताप—हे मेरे वीररसमत्त प्रचण्ड योद्धाओ ! वैरीदलदमन समर धीर सुयशी शस्त्रोपजीवियो ! मुझे तुम्हारे प्रसिद्ध राजभक्ति वीरतादि गुणोंसे पूर्ण आशा है कि तुम शत्रुदलपर उसी भाँति सघन वाणवर्षा करोगे जैसे घोर जलवृष्टि, तुम्हारे भाले वैरियोंके शरीरमें ऐसे प्रवेश करेंगे जैसे पृथ्वीमें इन्द्रवज्र, तुम्हारा गरजना अरिसेनाको इस प्रकार भयभीत करेगा जैसे भीरु अबलाओंको तड़ितकी तुमुलध्वनि, तुम्हारी तलवारें वैरियोंके सिरोपर इस भाँति चमकेंगी जैसे मेघमालामें चंचला, तुम्हारी डपटसे रिपुदल ऐसे तितरबितर हो जायगा जैसे क्वारका बादल, तुम्हारी सिरोही उनकी ग्रीवाको ऐसे काटेगी जैसे नर्म पौधेको किसानकी हँसिया—

सेना—(विविध वाणियां) “ऐसा ही होगा”, “ऐसा ही होगा”, “हमारे युवराज और सेनापति महाराजकी जय हो !! सुनो सुनो” !

प्रताप—सनातनकालसे विजयनगरकी सेनाकी सुख्याति है कि धर्मके मार्गमें यह सदैव अन्य सेनाओंसे एक पग आगे रही है इस कारण यदि आज हमलोग अधर्मी दिक्पालका उत्पात दमन करनेको बद्धपरिकर हुए हैं तो उचित ही है । विशेषकर मुझे यह कहना है कि हम लोगोंको अपनी अपनी प्रभु-भक्तिको सिद्ध करनेका और प्रजावत्सल श्रीमहाराज अमरसिंहके अन्नश्रृण से उन्नत होनेका अवसर बहुत कालमें मिला है ।

सेना—(विविध वाणियां) “हम रणमें जूझकर महाराजके श्रृणसे उद्धार स्वीकार करते हैं” “हम अपने स्वामीके निमित्त पसीनेकी जगह लोहू गिरावेंगे”—

प्रता०—क्यों न हो ! सामरिक बंधुगण !

सेना—(विविध वाणियाँ) “सुनो सुनो”, “अभी चुप रहो ।”

प्रता०—मेरे सामरिक मित्रो ! अब चलनेका समय आ गया है । बस, अपने अपने इष्टदेवको स्मरण करके यात्रा करो, और प्रत्येक वीर यह दृढ़ संकल्प कर लो कि विजयनगरको अमरावती-विजय-कीर्तिके साथ लौटोगे नहीं तो संग्रामभूमिसे सीधे अमरावतीहीको जाकर अमरगणमें मिल जाओगे ।

सेना—“यही सङ्कल्प है”, “महाराज अमरसिंहकी जय हो !”

(सेना का प्रस्थान)

चारण—

एकनतें एक बली तेजसी समर धीर वीर जब धावें भरे साहस गुमानमें ।
तुनके समान निज प्रान बलवान लेखैं राखें न तनक नेह तनय तियानमें ॥
रिपुन समूह सामने को होत बांको समय तीनमें तो एक जहां होनहार आनमें ।
भागैं ते कहावैं क्रूर जीतैं नाम पावैं सूर मरैं ते सिधारैं सुरपुर को विमानमें ॥
रुद्रसम देखत सरूप दोऊ बीरनकी सिंहहु डराकैं सियार लौ दबकि जात ।
सुनिकैं अतंक भरा तिनकी प्रबल हंक जानिकैं समीप मीच बैरीबद्ध थहरात ॥
भानुसे प्रतापवान चन्द्रसे सुजसवान भानु और प्रताप तेज पूरन प्रबलगात ।
सेना चतुरंगिनी संवारि चले युद्धकाज विजयगरकी पताका तुंग फहरात ॥

विजयनगरकी प्रजा अमरभूपतिकी सैना,
जिनके सम रणधीर जगतमें कोऊ हैना ।
धर्मपञ्चके हेतु देश अमरावति धावैं,
जीति सहज संग्राम कलुषकों अङ्ग मिटावैं ।
सो घाल छलीदिकपालका काटिरिपुनकी अलीको,
सबकधिरपियहि रणथलीमें इन्द्रबलीकी मली को ।

(पुनः कहता है, जयध्वनि करती हुई सेना जाती है)

(धीरे धीरे पटाक्षेप)

साहित्य हत्या

इस समय हमको इस बात की रुचि नहीं है कि हम रसिकमित्र या किसी ऐसे पत्र की पूरी समालोचना करें परन्तु इतना हमारा कर्तव्य अवश्य है कि उपादानियों की रसिकता और उपाधिधारियों की सुकविता की बानगी आपके सामने रखें। इस विचार से कि अभ्यास के प्रभाव से कुछ काल के उपरान्त कवियों की शक्ति प्रौढ़ हो जाती है, हम रसिक-मित्र के आदि के अंक छोड़कर एक नवीन अंक से काम लेंगे अर्थात् दिसम्बर सन् १९०० का अंक और इस विचार से कि विशेष प्रसंग के लिए विशेष परिश्रम और ध्यान से काव्यरचना की जाती है, हम उस अंक में से भी वह पद्य चुनेंगे जो आदि ही के पृष्ठों पर “वियोग-वज्राघात” के शीर्षक के नीचे पण्डित अम्बिकादत्त व्यास के “बैकुण्ठवास” पर छापे गये हैं।

मित्रो ! कलेजा थाम के बैठो, क्योंकि करुणरस की चढ़ाई है। पद्य क्या हैं, काव्ययुक्ति की मूर्ति, प्रसादगुण का प्रसाद, रस की नहर, व्यासजी की भांकी सभी कुछ तो हैं, लीजिये सुनिये—

मूरति सुकवि की छबीली छबि छबि की,
किरणरूप रवि की अचानक अथै गई।

मोह तम हरनी अमोघ हित करनी,
कलेश की कतरनी अकाख में कितै गई ॥

हाय हम सबको धरावे धीर अब को,
अनूठे अनुभव को समेट सज्ज लै गई।

प्यारे जन जोर कै निहार नेह तौर कै,
चटाक चित्त चोर कै कपाट पट्ट दै गई ॥”

इस कवित्त का आशय क्या है ? हमें तो यह किसी कुलटा वा चञ्चल स्त्री का वर्णन समझ पड़ता है। परन्तु नहीं इसे खींच खांच

‘यह छन्द सर्वाङ्ग-वर्षित है. कहीं तक उसके दोष लिखे जावें।

कर मरणशोक के भीतर लाना चाहिये तो मस्तिष्क को कुछ क्लेश दीजिये, और सोचिये कि “कपाट पट्ट दै गई” का क्या अर्थ हो सकता है, और कपाट देनेवाला है कौन, स्त्री वा पुरुष ? व्यासजी जिन गुणोंके लिये प्रसिद्ध थे, अर्थात् साहित्यनिपुणता, काव्यदक्षता उपदेशपरायणता इत्यादि, उनकी ओर तो कवित्तकार ने अगुलिनिर्देश भी नहीं किया है तीन चरणों में किसी रूपवती का वर्णन है, प्रथम चरण में “सुकवि” शब्द अलवत्ता आ गया है, जिससे सन्देह होता है कि वह रूपवती “मूरति” है। यदि ऐसा है तो अन्वय अद्वितीय है। तथापि “मोहतम हरनी” “क्लेश कतरनी” भी वह मूरति होगी। मूरति कतरनी कैसे हो सकती है ? अंगों में नाक प्रधान होती है और नासिका की उपमा किसी कवि ने कतरनी कही है, इसलिए व्यासजी ! आप इस समय बैकुण्ठ में हैं, और पूर्ण शान्ति को भोग रहे हैं, परन्तु साहित्य के नाम पर कि जो आपको इतना प्रिय था किंचित इधर ध्यान दीजिये और देखिये कि आपके सेये हुए साहित्य को मिथ्या सभाध्यक्षों और मृतक छन्दों के लेखकों का समूह किस निर्दयता से, किस निर्भयता से, किस प्रचंडता से संहार कर रहा है। यह पहिला ही कवित्त था, आगे इसी ढङ्ग के एक से एक बढ़कर कवित्त हैं, हम कहाँ तक पाठकों का समय लें इसलिये इस अंक के थोड़े से पद्य और देकर साहित्य-हत्या के दृश्य किसी दूसरी पुस्तक में देखेंगे।

काशी विश्वनाथ की पुरी में तन त्याग करि,

व्यास बड़ भागी ध्रुव धाम को सिधाये हैं।

सोकने सँगातिन के उर अवनीतल पै,

सङ्कट के अंकुर अनेक उपजाये हैं ॥

बार बार आँसू दुख रोवत हैं बार बार,

बाबरे बियोगी बिधि बामने सताये हैं।

भारत अभागी तोहि बारिध में बोरन को,

मानो तनधारी घन गरजन आये हैं ॥

पाठकवृन्द ! क्या इस घनाक्षरीको पढ़कर आप “वाह वाह” नहीं कह उठे ? तो ज्ञात होता है कि आपकी समझ (ज्ञान कीजिये) कुछ ठस है ! समझिये तो कैसा सर्वाङ्ग सुन्दर मनोहर रूपक है ! देखिये शरीरके अन्तर्गत जो “उर” है वही तो “अवनीतल” है और उसमें “सङ्कट” रूपी “अंकुर” जमाये हैं । किसीने ? शोकने (“शोक” वर्षापक्षमें कौन है ? इसका पता नहीं लगता) पानी भी बरसता है । काहे का ? आसूँ दुख रोनेका, और गरजना (अध्याहारसे रोनेके शोरका) तो रोना और बादलका गरजना बराबर ? मनुष्योंका रोना है कि भयानक श्वापदोंका ? अजी ! “उपमा एक देशस्य” केवल शोरसे प्रयोजन है । सो भी मान गए, परन्तु “तनधारी घन गरजन आये हैं” में जो “घन” है वह उपमेय पक्ष में किसको समझे ? कवित्त भरमें खोज करनेसे “बावरे वियोगी” ही तनधारी घन हो सकते हैं । परन्तु ऐसा अनुमान करनेमें एक महती बाधा है, क्योंकि यदि शरीरको घन मान लें दो घनके भीतर तो पानी, बिजुली धूम का होना ध्यान में आ सकता है, परन्तु घन के भीतर अंकुरसमूहसंयुक्त अवनीतल कैसा है ? ‘कविराज’ और ऐसी ठोकरें खावे ?

रसिन्मित्र क्या, बहुतसे काव्यकलाप ऐसे देखनेमें आते हैं कि उनको ध्यान में रखकर काव्यके नवीन नियम रचना महाकवियोंका कर्त्तव्य है । पिङ्गल तो प्रसिद्ध ही है, डिङ्गल भी हमने राजपूतानेके कवियोंसे सुना है, वह अपने ढङ्ग पर रोचक और नियमबद्ध है, परन्तु उक्त महाकवियोंको “अनर्गल” शास्त्र बनाना चाहिये उनमें जिन छन्दोंका वर्णन होना चाहिये उनके नाम हम रख देते हैं, सुनिये—

रबर छन्द—वह है जिसके चरण यथेच्छा बढ़ सकें ।

केंचुवा छन्द—वह है जिसके विश्राम बारी बारीसे मांटे और पतले हों अर्थात् किसीमें बहुतसे वर्ण वा मात्राएँ और किसीमें अल्प हों ।

माड़ छन्द—वह है जिसकी शब्दावली गीले भातके माड़के समान फैली हुई हो और इस कारण पढ़ते ही न बने ।

गड़बड़ छन्द—वह है जो पिङ्गल डिङ्गल अनर्गल किसी शास्त्रके अनुसार न हो और जिसे किसी महाकविने स्वच्छन्द लिख मारा हो ।

“आक्रिलको इशारा क्राफ़ी है” इसी ढङ्ग पर “कनखजुरा छन्द” “जलौका छन्द” “टिड्डी छन्द” “अँखफुड़वा छन्द” “कनफुड़वा-छन्द” “मण्डूक छन्द” इत्यादि इत्यादिके लक्षणोंका लिखना उन महा-कवियों के लिये सुगम होगा । तब महारसिक लोग नवीन छन्दोंपर अनर्गल शास्त्रके अनुसार शास्त्रार्थ करके “काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्” को सार्थक करेंगे ।

छन्दोभङ्गीकी कुछ बहार देखिये :

“आयो हिमर्तु” शशि शारद सुहान लागे ।

दिनहुँको सूरजकी तपन छिपाये जेति”

“आयो हिमर्तु” में एक अक्षर कम है । इस चरणका क्या अर्थ है ? “जेति” कौन शब्द है ? जा इति ?

पूर्तिके पश्चात् “बधाई औ सम्मति प्रकाशके” शीर्षकके नीचे और भी मनोहर छन्द हैं । इनमें रसिकमित्रके मित्रोंने खूब ही दिल खोलके बधाई दी है, परन्तु छन्दोभङ्गीकी उपासना तो भी नहीं छोड़ी । नमूना लीजिये—

“मित्रको करत काज कविता रसिकनको,
बदत रसिकमित्र ताहोते जहान है ।

× × ×

साहित्य सरीरको सजीवित बनाइबेको,
बीस बिसे ताके हित भयो तुम प्रान है ॥”

देखो ! साहित्यका शरीर निष्प्राण है, उसे जिलानेके लिये हे रसिक-मित्र ! तुम प्राण भयो है ! (व्याकरणका प्राणहरण तो हो लेवे, साहित्य दुखिया जिसे चाहे मरा ही बना रहे ।)

हाय कहाँ यह रस मर्दन और कहाँ यह रसिकता की डींग ! कहाँ यह व्यापारका सर्वनाश और कहाँ यह नागरीकी उन्नतिका उद्देश्य ! कहाँ

यह साहित्यके गलेपर अकविताकी छुरीका रगड़ना और कहाँ यह साहित्य-प्राणदानका उद्योग !

“रसिकनको” में छन्दकी गति बिगड़ती है यह तो स्पष्ट है, पर “रसिक” को एक शब्द और “नको” एक शब्द मानें तो गति शुद्ध हो जाती है। “नको” दक्षिणमें “नहीं” को कहते हैं।

पाठक महाशयो ! व्याकरणकी त्रुटिके सामने छन्दोभङ्ग क्या पदाथ है ! इसलिये इस चरणकी सुन्दरताको देखिये—

“याही भांति बरषाधिवेशनमें प्रतिवर्ष, लहलही ।

लागी रहै कविता कविता सुमन बाग ।”

समझे कविता रूपी सुमनकी बाग लगी रहै। नहीं नहीं “बगिया लगी रहै” होगा, छपनेके बेलबूटोंके कारण लहलही बगिया का बाग हो गया होगा।

अब एक “तीर्थ” जीका अनर्गल छन्द ऐसा सुनिये कि जिसका भावार्थ किसी प्रकार अनुमान ही में न आवे।

“जाय कहो वाही दहिजारको जहाँलों बने,
गिनती कराऊँ कहा कौन कौन हालकी ।
मोहिंको लिवाय आय आपुभी निचिन जाय,
सुधि हू न लीन्हों कभू बच्चा अरु बालकी ॥
यमुना विदित वाके रीति नीति कहँ,
लागनो न देहैं आगे बड़े बड़े गालकी ।
कौन के बहाने कौन बातके हवाल कीन्हों,
लाज गल आई उन्हें खेलमें खिलालकी ॥”

पाठकवृन्द ! समझे ! हम तो नहीं समझे और आप भी कुछ न समझे होंगे ! ताश वा गझिफा हो रहा है, उसमें “दहिजार” को “खिलाल” हो गया है, इतना ही समझमें आता है। दूसरे चरणमें प्रेषित्यतिका की छुटा झलक रही है। तीसरे चरणमें “बड़े बड़े गाल”

हैं। चौथे चरणमें “बहाना” और “हवाल” पश्चात् “खिलाल” की लाज लग आयी। क्या वचनप्रबन्ध है ! वाह वाह ! क्या भाव है, अहा हा हा ! परन्तु तीर्थजी अहंकार करें कि ऐसे कवित्त केवल वहीं बनाना जानते हैं तो ठीक नहीं, देखिये एक प्राचीन दोहा—

गरजन लागी बादरी बरसन लाग खुगीर ।

चील बसूसा लैगई, काहे से पछोरो राव ॥*

क्यों उपाधिदानी और उपाधिधारी महोदयो ! कैसा भावपूर्ण दोहा है ? परन्तु तो भी एक बात में यह दोहा खिलाल वाले कवित्तसे हल्का है—अर्थात् कवित्तके अर्थ समझमें नहीं आते और दोहेके शब्द और पद ऐसे गूढ़ वा कठिन नहीं हैं !

एक महाकविजी ने एक दोहा प्रकाशित किया था, वह भी उक्त कवित्तकी सुन्दरताको नहीं पाता। वह यह है—

“भैसी चढ़ी बबूल पर लप लप जामुन खाय ।

छीतले वाके कल्ला बसूला, देखें दूध कहे मैं दुहेंगों ॥”

“तीर्थ” का अवगाहन हो चुका। अब “काव्यधराधर” की कविताकी सहस्ररसनासे स्तुति करने का अवसर आया।

“कै यह पत्र प्रकाश अपूरब पूर विकाश स्वकीर्ति विशाल की ।

दै उपहार उपाधि अपार विचारके नम्बरवार निहाल की ।

सानद माहि सराहत हैं सब श्री रसिकेश जो युक्ति कमाल की ।

त्यों बलभद्रजू भांति अनेक प्रशंसत बुद्धि मनोहरलालकी ।”

शाबाश ! धराधर जी शाबाश ! धड़ाधड़ व्याकरण पर विष फूँके जाइये, परन्तु रसिकमित्र और उसके प्रकाशकी प्रशंसामें मत चूकिये ।

* हिन्दीके पुराने सुसज्जमान कवि अमीर खुसरो इस प्रकारकी कौतुक-पूर्ण रचनाओंके आविष्कारकोंमें से थे, उनके “अनमिल” “मुकुरी” “दोसखुने” प्रसिद्ध हैं। यह दोहा “अनमिल” है।

‘आशा है कि आपको फणीन्द्र से भी बढ़कर कोई पदवी मिलेगी, जिसका नाममात्र सुनकर बेचारे गजानन का मूषक डरकर उनको आपसे कोसों दूर ले भागेगा।

‘धराधर’ जी की कुछ शब्द रचना और भी देखिए—

×

×

×

“जायकै सुनाय कंसरायसो तुम्हारो भेद,
मणि बलभद्र भूरि बातें तब हालकी।
पकरि मंगाय खूज करिहै सजाव जब,
तब भूलि जैहै सब लाली यह लालकी ॥”

इसका अन्वय—जाकर के कंसराय से तुम्हारा शब्द सुना करके...
जब पकड़ मंगाकर खूब सजा करेगा तब.....

विचित्र शब्द रचना ! कौन जायगा, कौन सुनावेगा, कौन पकड़ मंगवाकर सजा करेगा यह सब कथनके विपरीत अनुमानसे समझना चाहिये ! धराधरत्व और यह गड़बड़त्व !

अब हम अपने देशकी विद्वान्मण्डलीसे प्रार्थनापूर्वक निवेदन करते हैं कि आपका कर्त्तव्य है कि साहित्यकी रक्षा कीजिये और उसे अयोग्य व्यक्तियोंके हाथसे घायल न होने दीजिये। तदुपरान्त वे सज्जन, जिनके लेखों की आवश्यकता तथा साहित्य भक्ति की प्रेरणासे हमको समालोचना करनी पड़ी है और करनी पड़ेगी, हमपर रुष्ट न होकर हमें क्षमायोग्य समझें और यह निश्चय जानें कि जो कुछ हमने लिखा है वह साहित्य की भलाई, मातृभाषाकी भलाई और स्वयं उनकी भलाईके लिये लिखा है।

“शत्रोरपि गुणावच्या दोषावच्या गुरोरपि ।”

इतिशम्

